अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-39, अंक-09, 16-31 दिसंबर, 2015

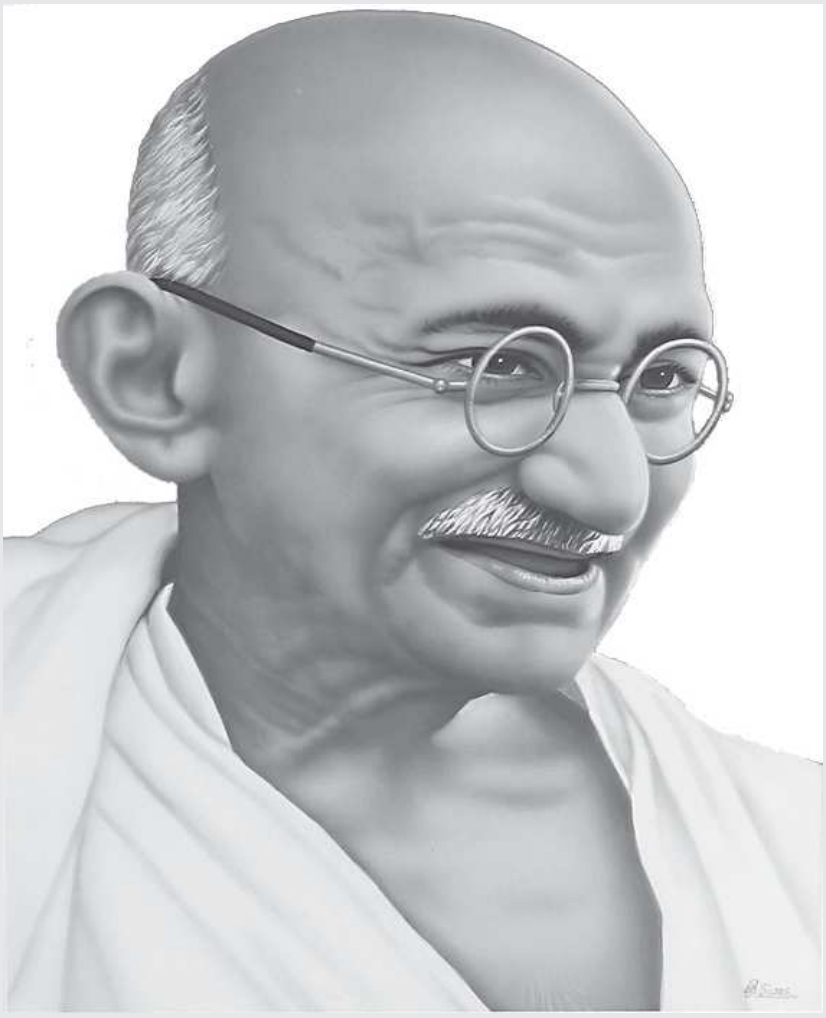

" राजनीतिक स्वतंत्रता से मेरा मतलब अंग्रेजों के हाउस आफ कामन्स, या रूस के सोवियत शासन, अथवा जर्मनी या इटली की फासिस्ट शासन-प्रणाली की नकल से नहीं है। उनकी शासन-प्रणालियां उनकी अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार होंगी। परंतु स्वराज्य में हमारी शासन-प्रणाली हमारी अपनी प्रतिभा के अनुसार होंगी। वह कैसी होगी, यह मैं नहीं बता सकता। मैंने उसका वर्णन 'रामराज्य' शब्द के द्वारा किया है, अर्थात विशुद्ध नीति के आधार पर स्थापित लोकतंत्र।"

('बापू-कथा' से)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 39, अंक : 09, 16-31 दिसंबर, 2015

संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. संपादकीय : आत्मज्ञान एवं... 2
2. जलवायु परिवर्तन : विकासशील देशों... 3
3. कॉप-21 : पृथ्वी को बचाने की... 5
4. ऊर्जा-क्षय की नीति... 6
5. संभव है किसान-संकट का समाधान... 8
6. विश्व व्यापार में मंदी का दौर... 9
7. नया नहीं सम्प्रदायों का राजनैतिक... 10
8. आउट-डेटेड हो गयी है राजनीति... 12
9. डिजिटल इंडिया का वर्तमान सच... 13
10. शिक्षा का अधिकार अधिनियम... 14
11. धोखे का बीमा कहां होगा?... 15
12. ज्ञान का सार आचार है... 18
13. कविता : मनुष्यों का सनातन धर्म... 19
14. संघ अध्यक्ष के नाम पत्र... 20

संपादकीय

आत्मज्ञान एवं आत्म-विकास

सर्वोदय आंदोलन की एक विशेषता यह रही है कि यह चेतना के विकास की बात केवल मनुष्य के सम्बन्धों एवं भौतिक सम्बन्धों के संदर्भ में नहीं करता रहा है। मनुष्य की चेतना के विकास में उसके आत्मज्ञान एवं आत्म-विकास को भी सर्वोदय आंदोलन ने सदैव महत्त्व दिया है।

बाह्य समानता, बाह्य एकता, बाह्य शोषण मुक्ति, बाह्य सहभागिता एवं बाह्य लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया आदि; नियमों एवं सामाजिक मूल्यों की स्वीकार्यता द्वारा प्राप्त की जा सकेगी। लेकिन मनुष्य, मनुष्य से प्रेम करे, मन-वचन व कर्म से अहिंसा का आचरण करे, तथा भिन्न मत व भिन्न विश्व-दृष्टि का आदर करे, इसके लिए जरूरी है कि उसे 'स्व' का या 'आत्म' का ज्ञान भी अहिंसक क्रांति की प्रक्रिया में होता जाये।

जैसे जब योरोप के लोगों ने दुनिया भर में अपने उपनिवेश बनाये, अन्य समाजों को गुलाम बनाया तो वे रुग्ण मानसिकता से ग्रस्त थे। अपनी इस रुग्ण मानसिकता को छिपाने के लिए उन्होंने अन्य समाजों को गुलाम बनाने के अभियान को, उन्हें सभ्य बनाने का अभियान करार दिया। इसी रुग्ण मानसिकता में से पूंजीवाद का भी जन्म हुआ था, तथा केन्द्रीकृत औद्योगिक समाज का विकास शुरू हुआ था।

लेकिन सामूहिक रुग्ण मानसिकता अपना वर्चस्व तभी तक बनाये रख सकती है, जब तक उसके पास अधिक हिंसा शक्ति एवं युद्ध के बेहतर (अधिक संहारक) अस्त्र-शस्त्र हों। योरोप ने भी तथा बाद में अमेरिका ने भी यही किया।

क्रांति के नाम पर, इनका विरोध करने वाले भी, अपनी क्रांति के लिए हिंसा शक्ति एवं संहारक अस्त्रों पर निर्भर करने लगे। फलस्वरूप मानवीयता, एक रुग्ण मानसिकता से दूसरे रुग्ण मानसिकता के खेल की शिकार होती गयी।

गांधी ने रुग्ण मानसिकता से उपजी सभ्यता को शैतानी सभ्यता तो कहा, लेकिन इसका विकल्प उन्होंने अहिंसात्मक उपायों, अर्थात सत्याग्रह एवं वैकल्पिक रचना द्वारा खड़ा करने का प्रयास किया। इसीलिए उन्होंने रुग्ण मानसिकता वाले लोगों के प्रति प्रेम रखते हुए भी दृढ़तापूर्वक उनकी नीतियों एवं व्यवस्थाओं का विरोध किया। गांधीजी को न तो रुग्ण मानसिकता वाला विकास स्वीकार्य था, न ही उसको बनाये रखने वाली संहारक शक्तियां स्वीकार्य थीं।

लेकिन यह निषेध करने की क्षमता तथा नया विकल्प बनाने की क्षमता कहां से आयेगी? गांधी-विचार के अनुसार इसकी प्रेरणा का एक स्रोत नये मूल्य एवं नयी व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता होगी, तथा दूसरा स्रोत आत्मबल होगा। समाज में यदि आत्मबल का संचार नहीं होगा, तो परिवर्तन केवल बाह्य एवं थोड़े समय तक टिकने वाला होगा। आत्मबल न केवल परिवर्तन को उच्चतर मूल्यों की ओर ले जायेगा, बल्कि उच्च से उच्चतर मूल्यों की ओर बढ़ते रहने की ऊर्जा बनी रहेगी। प्रेम, अहिंसा एवं सम-आदर की शक्तियां एवं वृत्तियां आंतरिक शक्ति द्वारा संचालित होंगी।

इसीलिए क्रांतिकारी चेतना के विकास में गांधीजी ने आत्मज्ञान एवं आत्म-विकास को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना था। आत्मज्ञान एवं आत्म-विकास व्यक्तिगत मोक्ष का माध्यम नहीं बल्कि समाज में अहिंसक क्रांति का माध्यम बनाने होंगे। मनुष्यों के सम्बन्धों के बीच तथा मनुष्य व प्रकृति के सम्बन्धों के निरूपण में, यही चेतना नयी सभ्यता के उदय का कारण बनेगी। सर्वोदय को अपनी इस भूमिका पर और अधिक गहराई से विचार करना होगा।

बिमल कुमार

सामयिक

जलवायु परिवर्तन : विकासशील देशों की रोजी-रोटी को बड़ा खतरा

❑ सुरेश भाई

21वीं शताब्दी के बारे में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 110-320 करोड़ लोग जल दुर्लभता का सामना करेंगे। 60 करोड़ लोगों के सामने रोटी का संकट आयेगा और लगभग 70 लाख लोगों को तटवर्ती बाढ़ों से जूझना पड़ेगा। इस संकट के कारण सन् 2050 तक 25 करोड़ लोगों को सूखा, बाढ़ एवं चक्रवातों के कारण अपने स्थानों को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

पेरिस से जलवायु परिवर्तन की हलचलें फिर ताजा हो गयी हैं। दुनिया के देशों की चिन्ता है कि वे ओजोन परत को प्रभावित करने वाली ग्रीन हाउस गैसों को कम करेंगे। लेकिन जब वे अपने-अपने देशों में लौटते हैं, तो जिन-जिन उपक्रमों से जलवायु संकट बढ़ रहा है, वही विकास के मानक बन जाते हैं। सच्चाई यह है कि जलवायु परिवर्तन के नाम पर विकसित राष्ट्र उन विकासशील देशों की मदद भी नहीं करते हैं, जहां के गरीब किसान धरती की प्यास बुझाने में लगे हैं, जंगल बचा रहे हैं। इतना ही नहीं वे विकास के कारण विस्थापित समाज को न्याय दिलाने की मांग करते हैं।

अब तक वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के नाम पर तापमान रोकने के लिए दर्जनभर संधियां हो गयी हैं, इसके बावजूद भी विकासशील देशों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। यह स्थिति सन् 1992 से है, जब रियो डि जेनेरिओ में 154 देशों ने यूएनएफसीसी के मसविदे पर हस्ताक्षर किये थे। इसके बाद भी 179 देशों ने यह भी सहमति बनायी थी कि 21वीं शताब्दी के लिए दीर्घजीवी विकास की सोच को साकार करने के लिए वे स्वस्थ अर्थव्यवस्था विकसित करेंगे। तब से आज तक आईपीसीसी की रिपोर्टों से यह खुलासा जरूर हो गया है कि मानव प्रवृत्तियां ही पिछली शताब्दी में 66 प्रतिशत से 90 प्रतिशत वैश्विक तापमान का कारण बनी हैं। इनकी रिपोर्टों में और भी खुलासा हुआ है कि कारखानों, वाहनों तथा अन्य धूम्र केन्द्रों से निकलने वाली कार्बन डाईऑक्साइड से पिछले 50 वर्षों से तापमान में वृद्धि हो रही है।

मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार पिछले 1000 वर्षों में 1990 का दशक सबसे गर्म और 20वीं शताब्दी सबसे गर्म मानी गयी। फिर 21वीं शताब्दी के बारे में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 110-320 करोड़ लोग जल दुर्लभता का सामना करेंगे। 60 करोड़ लोगों के सामने रोटी का संकट आयेगा और लगभग 70 लाख लोगों को तटवर्ती बाढ़ों से जूझना पड़ेगा। इस संकट के कारण सन् 2050 तक 25 करोड़ लोगों को सूखा, बाढ़ एवं चक्रवातों के कारण अपने स्थानों को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।

क्रिश्चयन एड की रिपोर्ट बताती है कि पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक 7 में से 1 व्यक्ति को अपने घर को छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ेगा। क्योंकि पहले से चल रहे विस्थापन की समस्या को जलवायु परिवर्तन गहरा घाव पैदा करेगी। बड़े पैमाने पर पर्यावरण की कीमत पर बन रही विकास योजनाएं, आपसी लड़ाइयां और पर्यावरणीय क्षति के कारण करोड़ों लोगों का जीवन बेसहारा कर सकती है। वर्तमान की लड़ाइयों व विकास योजनाओं तथा प्राकृतिक आपदाओं के कारण 15.5 करोड़ लोग प्रभावित होने की कगार पर हैं। भविष्य के लिए यह कहा जा रहा है कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव 8.50 करोड़ लोगों को सीधे जल की कमी, समुद्री जल स्तर बढ़ने तथा नष्ट होते चरागाह जैसी परिस्थितियों के कारण विस्थापित होने की कगार पर है। यह स्थिति तब और विकराल होगी, यदि वैज्ञानिकों के अनुसार दुनिया 2 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा गर्म होती है। यदि ऐसा न हो सका, तो इस सदी के अन्त तक विनाशकारी प्रभाव देखने को मिलेंगे। पेरिस के जलवायु सम्मेलन में 2 डिग्री सेल्सियस तक तापमान घटाने पर फिर सहमति बनी है।

विश्व के सर्वाधिक संवेदनशील क्षेत्रों में अस्थिरता के भयावह परिणाम सामने आ सकते हैं। प्राकृतिक आपदाओं की लगातार पुनरावृत्ति से कई देशों के सामने सुरक्षा की बड़ी चुनौतियां खड़ी हो सकती हैं। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 30 नवंबर, 2015 को पेरिस जाकर विकसित राष्ट्रों के समक्ष जलवायु परिवर्तन से प्रभावित विकासशील देशों के गरीब समाज को न्याय दिलाने की मांग उठायी है। उन्होंने विकसित राष्ट्रों से 2020 तक प्रतिवर्ष सौ अरब डॉलर उत्सर्जन कटौती के लिए मांगे हैं। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉर्ज बुश के सामने भी नासा के वैज्ञानिक डॉ. जेम्स हॉन्सेन को इस बात की फटकार खानी पड़ी थी कि वे वैश्विक तापमान के कारण तूफान की घटनाओं की हकीकत को सामने लाना चाहते थे। उन्होंने मानवीय गतिविधियों को जिम्मेदार माना था, लेकिन उसे अनसुना कर दिया गया है। इसलिए वैश्विक सम्मेलनों में यह बात कहना आसान है कि सभी देश एक दूसरे को मदद करेंगे, ऐसी संधियों पर हस्ताक्षर भी हुए हैं, और पेरिस में भी हो रहे हैं। लेकिन जमीनी हकीकतें कभी आइना नहीं

बन पाती हैं। उदाहरण है कि नदियों को बांधने व जोड़ने व प्रदूषित होने के बाद सभी सामाजिक व पर्यावरणीय प्रभाव नजरअंदाज किये जाते हैं।

विकसित राष्ट्रों ने अंधाधुंध औद्योगीकरण के द्वारा जितना विनाश किया है, वे भविष्य में इस पर कटौती करने को तैयार नहीं हैं। उनका जोर आज भी विकासशील देशों को मदद के नाम पर हरियाली संरक्षण का पाठ पढ़ाते हैं, लेकिन हरियाली बचाने वाले समाज को न तो रोजगार मिला और न ही उसके काम को पहचान मिली है। यदि दुनिया में पहचान है तो उन्हीं उद्योगपतियों की, जिन्होंने सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन किया है। 80 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन केवल विकसित देश कर रहे हैं, जहां अमेरिका प्रतिवर्ष 50.7 बिलियन टन, चीन 15.7 बिलियन टन की अपेक्षा भारत भी 4.2 बिलियन टन कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कर रहे हैं। केवल 18 वर्ष पूर्व के आंकड़े बताते हैं कि अमेरिका में एक आदमी का कार्बन उत्सर्जन 19 भारतीयों, 30 पाकिस्तानियों, 19 श्रीलंकाइयों, 107 बांग्लादेशियों, 269 नेपालियों के बराबर है। इसी तरह यूरोपियन यूनियन और जापान का उत्सर्जन भी अमेरिका से आधे के बराबर है।

विकसित देशों के कार्बन उत्सर्जन ने पिछले 100 वर्षों में 0.3 से 0.6 डिग्री सेल्सियस के बीच तापमान में वृद्धि हुई है। पिछले 100 वर्षों में ही समुद्र जल स्तर 10-25 सेमी बढ़ा है। इसका कारण है कि दुनिया के हिमनद तेजी से पिघल रहे हैं। सन् 2100 तक 1 मीटर तक समुद्री जलस्तर में वृद्धि की आशंका है। इसका प्रभाव तटीय इलाकों पर बसी हुई आबादी को झेलना पड़ेगा। अभी तमिलनाडु की आपदा के पीछे वहां की दो नदियों को डम्पिंग यार्ड के रूप में इस्तेमाल होने के कारण बारिश के पानी की निकासी ही रुक गयी है।

भारत में अभी तक आधी आबादी के पास बिजली, पानी, स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं का टोटा है। यह जलवायु अनुकूलन के अनुसार आपूर्ति हो, इसके लिए सोलर एनर्जी, छोटी पनबिजली, कुटीर उद्योग, जल संरक्षण, वर्षा जल का प्रयोग, भूमि वितरण, स्थानीय जड़ी बूटियों का विकास, ग्रामीण वस्त्रोद्योग की स्थापना से रोजगार भी मिले। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सीधे मौसम चक्र पर पड़ गया है। इसके परिणाम कृषि के उत्पादन पर देखा जा रहा है, जल स्त्रोत 75 प्रतिशत से अधिक सूख गये हैं।

अब सवाल यह भी उठ रहा है कि विकासशील देशों के औद्योगीकरण को कम करके जलवायु परिवर्तन रोकने की पहल क्यों हो, इसका उत्तर जलवायु सम्मेलनों में अवश्य ढूंढ़ा जाय। लेकिन विकासशील देश भी विकसित राष्ट्रों की राह पकड़ेंगे, तो कभी भी पृथ्वी का तापमान कम नहीं होगा। विकसित राष्ट्रों की जिद बनी रही तो तब कभी भी जलवायु परिवर्तन का कहर आसमानी बारिश की तरह दुनिया को अपने आगोस में ले लेगा। दुनिया भर में इसके उपाय अब ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को घटाने के ऊपर निर्भर करता है। इसके लिए व्यापक दृष्टि के आधार पर जिम्मेदार कारकों के प्रभाव को रोकने की कार्यवाही पर निर्भर करता है। यह कार्य सभी राष्ट्रों की ईमानदारी व रणनीति पर निर्भर करता है। प्राकृतिक संसाधनों के विकास में लोगों की निर्णायक भागीदारी बढ़ाने और उन्हें अधिकार सौंपने की शर्त पर प्रभावी परिणाम हासिल किये जा सकते हैं। ❑

उपकार : एक सामाजिक मूल्य

❑ दादा धर्माधिकारी

मान लीजिए कि मैं रात में जा रहा हूं। रिक्शे का धक्का लगने से मैं गिर पड़ता हूं। मुझे चोट आ जाती है। रामकृष्ण शर्मा इक्के पर बैठकर जा रहे हैं। मुझे देखकर कहते हैं, ''दादा, मेरे इक्के में आ जाइए। आपके घर तक पहुंचा दूं। आपको चोट भी आयी है।'' अब प्रश्न है कि शर्माजी का मैं बहुत आभारी हूं। इसका बदला कैसे चुकाऊं? क्या मैं ऐसी कामना करूं कि ऐसा मौका एकाध दिन उन पर भी आये और उस वक्त मैं उनकी मदद करूं? क्या यह सदाचार होगा? लोग तो इसे 'व्यवहार' कहते हैं। लेकिन मैं कहूंगा कि ''शर्माजी, भगवान न करे, और किसी पर यदि ऐसा मौका आये, तो मैं उन्हें ऐसी ही मदद करूंगा।'' यहां उपकार एक 'सामाजिक मूल्य' बन जाता है। इस प्रकार हम सर्वोदय की ओर एक-एक कदम आगे बढ़ते हैं।

हमें दूसरों को अपनी जिन्दगी में शामिल करना है। दूसरे को सुख देने में सुख होता है और दुःख देने में दुःख होता है। लेकिन पहला कदम मैं उठाऊंगा। लोगों से तुम जितना चाहते हो, उससे अधिक तुम उन्हें दो। यह सुवर्ण नियम नहीं है। यह तो जीवन का नकद कलदार है। जीवन के कलदार के लिए सराफे के नियम लागू नहीं होते। तो पहला कदम तुम उठाओ और फिर जितना चाहते हो, उससे ज्यादा दो। यह लेन-देन नहीं है, यह परस्पर उपकार नहीं है। यह सामाजिक मूल्य है। उपकार सामाजिक मूल्य तभी बनता है, जब उसमें प्रत्युपकार नहीं होता है। उपकार निरपेक्ष होना चाहिए। सापेक्ष उपकार, उपकार नहीं है। हम प्रतिदिन भी नहीं चाहते और प्रत्युपकार की भी आशा नहीं करते; ऐसा जो उपकार होता है, उसे हम समाज-धर्म कहते हैं। वह सामाजिक मूल्य बन जाता है।

...उपकार का अर्थ है—अपने जैसा दूसरे को देखना। 'उप' का अर्थ है 'समीप'। अपने नजदीक दूसरे को करना 'उपकार' है।

सामयिक

कॉप-21 : पृथ्वी को बचाने की जद्दोजहद

❑ रवीन्द्र

पेरिस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य पृथ्वी के तापमान में वृद्धि को इस शताब्दी के अंत तक दो डिग्री सेल्सियस तक नियंत्रित करने का है। परंतु वर्तमान समय में धरती का तापमान एक डिग्री सेल्सियस तक बढ़ चुका है और इस समस्या से निपटना एक बड़ी चुनौती है।

पर्यावरण संरक्षण के विषय पर पेरिस में वैश्विक स्तर का सम्मेलन कॉप-21 शुरू हो चुका है। सर्वप्रथम सन् 1992 में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन संधि पर हस्ताक्षर हुए थे तथा उस संधि में सम्मिलित सदस्य देशों के समूह को 'कॉन्फ्रेंस ऑफ पार्टिज़ (कॉप)' का नाम देकर सन् 1995 में प्रथम सम्मेलन आयोजित हुआ। यह इक्कीसवां सम्मेलन है; अतः इसे कॉप-21 कहा गया है। वर्तमान में 196 देश इसमें सम्मिलित हैं। यह 'कॉप', 'यूएनएफसीसीसी (संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन रूपरेखा संधि)' द्वारा संचालित होता है।

जलवायु परिवर्तन के अंतर्गत ग्रीन हाउस गैसों व कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने हेतु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1997 में 'क्योटो प्रोटोकॉल' लाया गया। इसमें 'बीबीडीआर-आरसी (सामान्य वरन् विभेदित उत्तरदायित्व और संबंधित क्षमताएं)' के द्वारा मुख्यतः विकसित देशों की जवाबदेही ग्रीन हाउस गैसों व कार्बन उत्सर्जन के लिए निर्धारित की गयी। विगत 150 वर्षों में 80 प्रतिशत कार्बन उत्सर्जन के लिए प्रमुख रूप से विकसित देश ही उत्तरदायी हैं। अतः न्यायसंगत निर्णय करके उन विकसित देशों के कार्बन उत्सर्जन में कटौती और उनके द्वारा विकासशील देशों को तकनीकी व वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने की भूमिका लक्ष्यों की पूर्ति अभी तक नहीं हुई है। 'क्योटो प्रोटोकॉल' क्रियान्वित हुआ तथा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति अभी तक नहीं हुई है। 'क्योटो प्रोटोकॉल' के अंतिम चरण में विकसित व विकासशील देशों के मध्य कार्बन उत्सर्जन गहरी कूटनीति का विषय बन गया। इसी कारण गत 'कॉप' सम्मेलनों से वैश्विक हित के लिए कोई ठोस समाधान सामने नहीं आ रहे हैं और कार्बन उत्सर्जन में कटौती हेतु सर्वसम्मत सुदृढ़ वैश्विक नीति नहीं बन पा रही है।

पेरिस सम्मेलन का प्रमुख उद्देश्य पृथ्वी के तापमान में वृद्धि को इस शताब्दी के अंत तक दो डिग्री सेल्सियस तक नियंत्रित करने का है। परंतु वर्तमान समय में धरती का तापमान एक डिग्री सेल्सियस तक बढ़ चुका है और इस समस्या से निपटना एक बड़ी चुनौती है। भारत सहित सभी सदस्य देशों ने अपने-अपने 'आईएनडीसी (नियत राष्ट्रीय निर्धारित योगदान)' घोषित किए हैं। भारत ने सन् 2030 तक अपने कार्बन उत्सर्जन में 30 से 35 प्रतिशत तक कमी लाने का लक्ष्य रखा है। जिसकी पूर्ति के लिए नवीनीकृत ऊर्जा का विस्तार, वनाच्छादन और जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कटौती आदि कार्य शामिल हैं। जलवायवीय परिवर्तन के कारण अनेक प्राकृतिक आपदाएं हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र के सामने आ रही हैं। जम्मू-कश्मीर में दो बार बाढ़ आ चुकी है। उत्तराखंड की दो वर्ष पूर्व की त्रासदी और हिमालयी क्षेत्रों में अतिवृष्टि आदि कारणों से भू-स्खलन की अधिकता आदि उत्तर भारत में घटित आपदाएं हैं। विदर्भ व मराठवाड़ा में अनावृष्टि के कारण बारह हजार से अधिक गांव जल व खाद्यान्न आपूर्ति की समस्या से ग्रस्त हैं। उड़ीसा और आंध्र प्रदेश चक्रवातों की पुनरावृत्ति की समस्या से पीड़ित है तथा वर्तमान में तमिलनाडु अतिवृष्टि के कारण बाढ़ से जूझ रहा है।

राष्ट्रीय स्तर पर इनके समाधान हेतु विद्युत उत्पादन में नवीनीकृत ऊर्जा उत्पादन का भाग अधिकतम करके एवं उसके द्वारा उद्योग एवं रेल परिवहन को आपूर्ति की जानी चाहिए। इसी के साथ जैव विविधता, वनों व पर्यावरण की सुरक्षा भी आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारत की प्रमुख जवाबदेही है। कार्बन उत्सर्जन में वह चौथे स्थान पर है तथा अमेरिका इस सूची में प्रथम स्थान पर। अमेरिका का कार्बन उत्सर्जन भारत की तुलना में 22 गुना है और वहां जीवाश्म ईंधन के उपयोग में निरंतर बढ़ोत्तरी हो रही है। उनके विकास व प्रदूषण में प्रत्यक्ष संबंध है; क्योंकि उनका नवीनीकृत ऊर्जा उत्पादन उपयोग की तुलना में अत्यन्त अल्प है। वे कार्बन उत्सर्जन में पर्याप्त कटौती के लिए कोई वास्तविक धरातलीय प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। अतः अमेरिका द्वारा घोषित 'आईएनडीसी' के लक्ष्यों का पूरा होना बहुत ही दूर की कौड़ी है।

यूरोपीय संगठन और अमेरिका की नीति जलवायु परिवर्तन के विषय पर कमोवेश एक समान है। दोनों ही विकासशील देशों को उपयुक्त तकनीकी तथा जलवायवीय वित्तीय सहायता देने पर सहमत नहीं हैं। अपने कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के विषय पर भी वे हठधर्मिता प्रदर्शित कर रहे हैं। चीन भी विश्व के मुख्य कार्बन उत्सर्जकों में से एक है तथा उसने व अमेरिका ने मात्र अपने परस्पर हितों को साधने के लिए कुछ सीमा तक कार्बन उत्सर्जन में कमी करने के समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। इसका पर्यावरण संरक्षण से कोई सीधा संबंध नहीं है। अफ्रीका महाद्वीप का उत्सर्जन तुलनात्मक रूप से कम है। परंतु विकसित देशों के कारण उसे अपने विकास से समझौता करना पड़ रहा है। एक मुख्य विषय प्रशांत महासागरीय व आर्कटिक क्षेत्र→

मत-सम्मत

ऊर्जा-क्षय की नीति

❑ अफलातून

प्रधानमंत्री के विदेश दौरों में साथ रहने वाले उद्योगपति के धंधे का प्रमुख क्षेत्र ऊर्जा उत्पादन का है। अडाणी समूह द्वारा राजस्थान सरकार के उपक्रम के साथ मिलकर 10,000 मेगावाट सौर्य बिजली बनाने की 65,000 करोड़ रुपये की योजना है। यह देश में नवीनीकरण योग्य ऊर्जा की सबसे बड़ी परियोजना है। ऑस्ट्रेलिया में 10 अरब डालर से प्रस्तावित कारमाइकल खनन योजना के बाद अडाणी समूह की यह दूसरे नंबर की परियोजना है।

भारत की लगभग एक चौथाई आबादी के पास रोशनी के लिए भी बिजली नहीं है। अमेरिका और विश्व व्यापार संगठन के लिए यह चिन्ता का विषय क्यों हो? 2013 में अमेरिका ने विश्व व्यापार संगठन में शिकायत दर्ज करायी कि भारत द्वारा अपने सौर्य ऊर्जा कार्यक्रम (जवाहरलाल नेहरू सोलर मिशन, NSM) के लिए दिया जा रहा अनुदान विश्व व्यापार संगठन के व्यापार नियमों का उल्लंघन है। शिकायत में कहा गया था कि सौर्य ऊर्जा संग्रहण के लिए जिन पुर्जों की आवश्यकता होती है, उसके विदेशी आपूर्तिकर्ताओं के खिलाफ भारत सरकार की नीति विभेदकारी है।

प्रधानमंत्री की हाल की अमेरिका यात्रा के ठीक पहले विश्व व्यापार संगठन के विवाद निपटारा समिति ने इस मामले में फैसला सुना दिया। सौर्य ऊर्जा संग्रहण में काम आने वाले पुर्जों को बनाने वाली भारतीय कंपनियों को दी जाने वाली रियायत विश्व व्यापार नियमों का उल्लंघन है तथा रियायत बंद न करने की स्थिति में भारत के खिलाफ व्यापार-प्रतिबंध की कार्रवाई की जाएगी।

दुनिया भर में समझदार देश जीवाश्म ईंधन जला कर बिजली बनाना कम करने तथा सौर्य ऊर्जा जैसे नवीनीकृत किए जाने लायक स्रोतों से बिजली बनाने का परिणाम बढ़ाने की जुगत में लगे हैं। मोरोक्को जैसे सहार रेगिस्तान से जुड़े देश में सन् 2020 कुल बिजली आवश्यकता की आधी नवीनीकृत किए जाने लायक स्रोत से पैदा होगी। इस प्रकार पैदा बिजली का कुछ हिस्सा वह योरप को निर्यात भी कर सकेगा। अमेरिका और जर्मनी जैसे औद्योगीकृत देशों की बात लें तो कुल बिजली जरूरत का अमेरिका 10 फीसदी नवीनीकृत स्रोत (कार्बन उत्सर्जन न करने वाले) से हासिल करता है जबकि जर्मनी अपनी जरूरत का 28 फीसदी स्वच्छ बिजली से हासिल करता है। अमेरिका खुद नवीनीकरण योग्य बिजली बनाने में अनुदान और कर्ज-रियायतें देता है। गत वर्षों में अमेरिका ने सालाना 39 अरब डॉलर का अनुदान तथा 30% कर छूट नवीनीकरण के लायक बिजली उत्पादन के लिए दी है। भारत ने इस संदर्भ में विश्व व्यापार संगठन में प्रश्न जरूर उठाया है परंतु अमेरिका की तरह विवाद पंचायत में मामला दर्ज नहीं कराया है।

अमेरिका द्वारा भारत के नेहरू सौर्य ऊर्जा मिशन की बाबत उठाये गये विवाद की बारीकी में चलें। नेहरू सौर्य ऊर्जा मिशन के पहले चरण में सौर्य बैटरी तथा सौर्य मॉड्यूट बनाने वाली भारतीय कंपनियों को अनुदान मिल रहा था किन्तु इससे अमेरिका को दिक्कत नहीं थी क्योंकि अमेरिकी कंपनियां

→के द्वीपीय देशों, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका के अनेक राष्ट्रों में निवास करने वाले स्वदेशी लोगों से जुड़ा है; जिसमें अखिल विश्व के तटीय क्षेत्रों में रहने वाले मूल निवासी भी सम्मिलित हैं। वे सभी अपने परिक्षेत्र में भू-संरक्षण और वन-संरक्षण के लिए कुछ हद तक उत्तरदायी हैं। परंतु हिमखंडों के पिघलने, सामुद्रिक जलस्तर के बढ़ने और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से उनके अस्तित्व व जीवन शैली दोनों पर संकट मंडरा रहा है। यह परिस्थिति जलवायवीय शरणार्थियों की समस्या भी उत्पन्न कर सकती है। अतः इनके हितों को साधने हेतु एवं व्यावहारिक हल निकालने के लिए अनेक देशों के नेताओं और उनके उच्च प्रशासनिक अधिकारियों को भी इस सम्मेलन में चर्चा हेतु आमंत्रित किया गया है।

इस सारी समस्या का हल सभी देशों द्वारा वैश्विक कल्याण हेतु अपने-अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतः समझकर उचित कार्यवाही करने से निकल सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा, सार्वदेशिक, कार्बन उत्सर्जन कटौती व हरित (नवीनीकृत) ऊर्जा के उत्पादन का वार्षिक विश्लेषण वर्तमान में क्रियान्वित करना अनिवार्य है। वैसे यह सन् 2024 में प्रस्तावित है। भारत द्वारा दृढ़ता से पर्यावरण की सुरक्षा के पक्ष में, अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करने पर सर्वकल्याणकारी जलवायु परिवर्तन नीति क्रियान्वित करवाने का मार्ग प्रशस्त होगा। जिससे सर्वसम्मति से जलवायु नीति व अर्थनीति में समन्वय स्पष्ट करके विकसित और विकासशील देशों के सार्वभौमिक हित साझा होते हैं। इसके पश्चात् सुरक्षित नवीनीकृत ऊर्जा का विकेन्द्रीकृत उत्पादन करके राष्ट्रों को ऊर्जा स्वावलम्बी बनाने की जरूरत भी है। इस हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा शोध व अनुसंधान के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय केन्द्रों की स्थापना करना मुख्य कार्य है।

आने वाला पखवाड़ा हमारे पृथ्वी ग्रह के भविष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। ❑

इनका बहुत कम निर्यात करती हैं। अमेरिका की आंखों में किरकिरी नेहरू सौर्य मिशन के दूसरे चरण में शुरू हुई। दूसरे चरण में यह संभावना थी कि भारत अपने मिशन में घरेलू उत्पादों के हिस्से का दायरा बढ़ा देगा और अक्टूबर 2013 में जब मिशन का दूसरा चरण शुरू हुआ तब अमेरिका की आशंका सही साबित हुई। भारतीय बाजार में अमेरिकी पतली फिल्म का वर्चस्व था। इसलिए भारतीय कंपनियों को छूट दिए जाने से अमेरिका का नुकसान होने लगा।

भारत द्वारा अन्य देशों के साथ विभेदकारी बर्ताव किया जा रहा है अमेरिका का यह तर्क विश्व व्यापार संगठन ने मान लिया, जब उसमें विस्मय की बात नहीं थी। कैनेडा द्वारा पर्यावरण के हक में तथा स्वदेशी सौर्य ऊर्जा को बढ़ावा देने के लिए बनाये गये एक कानून को यूरोपीय संघ और जापान ने विश्व व्यापार संगठन में चुनौती दी थी। विश्व व्यापार संगठन ने इस कानून को विभेदकारी ठहराया था।

भारत सरकार के खिलाफ आया यह फतवा देश और दुनिया के पर्यावरण के हित में नहीं है। *इससे ज्यादा चिन्तनीय है किसी अन्य देश अथवा थानेदारी करने वाले विश्व व्यापार संगठन के अलावा भारत की घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा दुर्नीति।* प्रधानमंत्री के विदेश दौरों में साथ रहने वाले उद्योगपति के धंधे का प्रमुख क्षेत्र ऊर्जा उत्पादन का है। अडाणी समूह द्वारा राजस्थान सरकार के उपक्रम के साथ मिलकर 10,000 मेगावाट सौर्य बिजली बनाने की 65,000 करोड़ रुपये की योजना है। यह देश में नवीनीकरण योग्य ऊर्जा की सबसे बड़ी परियोजना है। ऑस्ट्रेलिया में 10 अरब डालर से प्रस्तावित कारमाइकल खनन योजना के बाद अडाणी समूह की यह दूसरे नंबर की परियोजना है। इसकी सफलता इसमें लगने वाली पूंजी के जुगाड़ पर निर्भर है। वित्तीय वर्ष 2013-14 के खत्म होते वक्त अडाणी समूह पर 71,979 करोड़ का कर्ज था। उद्योगपति की लगायी अपनी पूंजी से कर्ज का अनुपात 2.92 (लगभग तीन गुना) था। ऐसी परियोजनाओं में आम तौर पर 70 फीसदी हिस्सा कर्ज का होता है।

अमेरिका की शिकायत पर भारत के खिलाफ विश्व व्यापार संगठन का यह फैसला अगस्त, 2015 में आया है। जनवरी, 2015 अडाणी समूह ने 'सन् एरिकसन' नामक अमेरिकी कंपनी के साथ मिलकर भारत का सबसे बड़ा सौर्य पैनल बनाने का कारखाना बैठाने का निर्णय ले लिया था। उस वक्त गौतम अडाणी ने घोषणा की थी, भारत नवीनीकरणीय ऊर्जा में दुनिया का नेतृत्व करेगा। भारत सरकार द्वारा देश के विरुद्ध दिए गए निर्णय का विरोध न करने की क्या यही प्रमुख वजह नहीं हो सकती है?

ऊर्जा के क्षेत्र में भारतीय पूंजीपतियों द्वारा छोटे मुल्कों में पाँव पसारने में सरकार की मदद की भूमिका पर गौर करना भी अप्रासंगिक नहीं होगा। उदारीकरण के 23 साल बीत जाने के बाद भी बजट का सबसे बड़ा मद कर्ज चुकाने में जाता है। इसके *बावजूद प्रधानमंत्री विदेश यात्राओं के क्रम में* मंगोलिया को एक अरब डॉलर अथवा बांग्लादेश को दो अरब डॉलर का कर्ज देना घोषित करते हैं। देश के नागरिकों को क्या इसका फक्र करना चाहिए? इस बात को भी हमें नजरअंदाज नहीं करना चाहिए कि मंगोलिया में नवीनीकरण योग्य बिजली में अडाणी तथा बांग्लादेश में विद्युत निर्माण में अम्बानी-अडाणी की परियोजनाएं चलने वाली है। ❑

कविता

बगावत की आवाज कहां है?

❑ डॉ. पुष्पा चौरसिया

चक्रव्यूह शंका का तोड़े ऐसा तीरन्दाज कहां है?
खुलेआम जो करे बगावत ऐसी भी आवाज कहां है?
नहीं पता यह अम्बर किस दिन ज्वाला बनकर टूट पड़ेगा?
धरती का अभिशाप न जाने किसके माथे फूट पड़ेगा?
सब अपना अस्तित्व सम्हाले काल चक्र से घिरे हुए हैं,
यमदूतों की पंचायत में सहमें-सहमें डरे हुए हैं।
नहीं पता इन युवा रगों में फिर उबाल कब आ पाएगा?
नहीं पता स्वार्थों का विषधर इस धरती से कब जाएगा?
श्रमगंगा में रहने वाला दो बूंदों को तरस रहा है,
जहां बिपुल भंडार वहीं पर धन कुबेर का बरस रहा है।
संसद का गलियारा तुमसे पूछ रहा है सत्ताधारी,
आजादी की अर्धशती और उतर न पायी अभी खुमारी?
आने वाली पीढ़ी को तुम कैसे उत्तर दे पाओगे?
जनता को आश्वासन देकर कब तक यों ही भरमाओगे?
प्रश्नों का अम्बार लगा है जनता में आक्रोश भरा है,
लेकिन भाषण नारों में तो सारा भारत हरा-भरा है।
बेरहमी से खर्चा हो तो धन कुबेर का भी घटता है,
जहां विषमता की खाई हो वहां नहीं सौदा पटता है।
मृगतृष्णा की झिलमिल धारा सदा-सर्वदा सबको ठगती,
तिरस्कार, शोषण अभाव के कड़वे फल जनता ही चखती।
पेट नहीं भर सका किसी का दिवास्वप्न ख्याली पुलाव से,
रोज सुनाई देता ग्रह स्वर गली-गली और गांव-गांव से।
उपवन की सब सेवा कर दें, फूल स्वयं ही खिल जाएंगे,
योगेश्वर के कहे मुताबिक वांछित फल सब मिल जाएंगे।

मत-सम्मत

संभव है किसान-संकट का समाधान

❑ भारत डोगरा

किसानों के संकट व खेती किसानी की गंभीर समस्याओं की ओर ध्यान तो बार-बार दिलाया जाता है, परंतु समाधान के तौर पर प्रायः अल्पकालीन राहत की ओर ही अधिक झुकाव रहता है। उपज की कीमत बढ़ा देने के अतिरिक्त, क्षतिपूर्ति करने व कर्ज अदायगी पर कुछ रोक लगा देने पर अक्सर जोर दिया जाता है। इस तरह की राहत की जरूरत भी समय-समय पर हो सकती है और इसकी मांग भी की जानी चाहिए। विशेष तौर पर इस समय जब बहुत से किसान सूखे की गंभीर स्थिति से जूझ रहे हैं तो ऐसे में राहत की जरूरत और भी अधिक है। परंतु बहुपक्षीय व जटिल किसान संकट केवल ऐसे उपायों मात्र से हल नहीं हो सकता है। इसके लिए तो कहीं अधिक व्यापक व बहुपक्षीय प्रयास चाहिए, जो समग्र रूप में ग्रामसुधार से जुड़ते हों।

यदि ऐसा हो तो पर्यावरण की रक्षा व समाज सुधार के कई कार्य भी साथ-साथ हो सकेंगे। गांवों में कई रचनात्मक कार्यों के लिए व्यापक एकता बन सकेगी। किसान संगठनों को इन व्यापक संभावनाओं की ओर भी ध्यान देना चाहिए। वैसे भी संकीर्ण आधार का आंदोलन न तो बहुत आगे बढ़ सकता है न टिकाऊ सिद्ध हो सकता है।

किसान संगठन स्वयं एक मांग उठाते रहे हैं कि उनके उत्पादन का उचित मूल्य मिले और समय पर भुगतान सुनिश्चित हो। यह मांग बहुत न्यायसंगत तो है, लेकिन इसके साथ यह सवाल भी जरूरी है कि कहीं इस स्थान की खेती ऐसी तो नहीं है, जो पर्यावरण की दृष्टि से प्रतिकूल हो। मान लीजिए कि ऐसे स्थान पर बड़े पैमाने पर गन्ना उगाया जा रहा है, जहां पानी की कमी है व गन्ने में अधिक पानी लगने के कारण जल-संकट उत्पन्न हो रहा है। इस स्थिति में यदि गन्ने का मूल्य बढ़ाया जाएगा तो गन्ने का उत्पादन और बड़े क्षेत्र में बढ़ाने को प्रोत्साहन मिलेगा व इस कारण क्षेत्र के अन्य सब लोगों के लिए जल-संकट और बढ़ेगा। अतः मांग इस रूप में होनी चाहिए कि किसान जल-संकट हल करने वाली खेती की ओर बढ़ सकें तथा इसके लिए उन्हें पर्याप्त सरकारी सहायता प्राप्त हो।

अतः किसानों के लिए न्यायसंगत मूल्य की मांग को इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि किसान मूलतः उन्हीं फसलों को उगायेंगे, जो क्षेत्र की मुख्य खाद्य फसले हैं। इन फसलों को सरकार स्थानीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली, राशन की दुकानों, आंगनवाड़ी व पोषण कार्यक्रमों के लिए खरीदेगी। यह खरीद इस मूल्य के आधार पर होगी कि किसानों को पर्याप्त बचत व आय हो। किसान फसल की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित करेंगे व जहरीली दवाओं आदि का उपयोग फसल में नहीं करेंगे। यदि इस रूप में उचित व न्यायसंगत मूल्य की मांग उठायी जाए तो यह बहुत सार्थक है, खाद्य व पर्यावरण रक्षा से जुड़ जाती है।

इसके साथ दूसरी मांग यह होनी चाहिए कि खेती के ऐसे तौर तरीके अपनाए जाएं जो स्थानीय संसाधनों पर आधारित हों, जिनमें बाजार से महंगे निवेश, जैसे रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाएं तरह-तरह की मशीनरी आदि न खरीदनी पड़े। खेती की ऐसी तकनीक हो जो बहुत सस्ती हो, न्यूनतम बाहरी खर्च की हो, आत्मनिर्भर हो, पर्यावरण की रक्षा के अनुकूल हो। इसमें जैविक खेती, मिट्टी व जल संरक्षण, परम्परागत बीजों को एकत्र करने, जैव-विविधता की रक्षा करने, हरियाली बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

इसे बढ़ावा देने के लिए केन्द्रीय व राज्य सरकारों को जल व नमी संरक्षण, लघु सिंचाई, परम्परागत बीजों के बीज बैंक बनाने, हरियाली बढ़ाने, वन-रक्षा, वृक्षारोपण, चरागाह रक्षा व प्रसार, देसी नस्लों के पशुपालन को बढ़ावा देना चाहिए। यह सब कार्य जन सहयोग से होना चाहिए। इसके लिए ग्रामीण रोजगार योजनाओं का अच्छे से अच्छा उपयोग होना चाहिए। इन सभी कार्यों के लिए तथा शिक्षा व स्वास्थ्य सुधारने के लिए सरकार को अपना बजट बढ़ाना चाहिए। गांवों, कस्बों व छोटे शहरों में सरकारी अस्पताल इतने अच्छे होने चाहिए कि वहां लगभग निःशुल्क या बहुत सस्ता इलाज सब गांववासियों को मिल सके।

गांवों में सभी तरह के नशे को दूर करने व महिलाओं की स्थिति में सुधार करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। आपसी लड़ाई झगड़ों और कोर्ट कचहरी के खर्चों को न्यूनतम करने व भ्रष्टाचार दूर करने के लिए एकजुट होना होगा। सभी गांवों में रचनात्मक कार्यों के लिए व पूरे गांव की प्रगति के लिए सभी तरह के भेदभाव को दूर कर सभी समुदायों की एकता को मजबूत करना चाहिए, जिसमें दलित समुदायों व मजदूरों, निर्धन वर्गों से न्यायसंगत व्यवहार पर विशेष ध्यान देना होगा।

गांवों व कस्बों की अर्थव्यवस्था को विविधता भरा बनाने के लिए विभिन्न स्थानीय जरूरतों को पूरा करने वाले लघु स्तर के उद्योगों, खादी उत्पादों व साथ में सूचना तकनीक पर आधारित नए रोजगारों को भी बढ़ावा देना चाहिए। अक्षण ऊर्जा स्रोतों के विकेन्द्रित विकास को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे गांवों की ऊर्जा आवश्यकताएं पूरी हों व अधिक स्थानीय रोजगारों का सृजन हो।

इस तरह के समग्र कार्यक्रम को अपनाकर किसानों की समस्याओं को इस तरह से सुलझाया जा सकता है, जिससे पर्यावरण की रक्षा व समाज सुधार जैसे अन्य महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भी साथ प्राप्त हो सके। ❑

वैश्विक परिदृश्य

विश्व व्यापार में मंदी का दौर

❑ कनग राजा

विश्व व्यापार संगठन के अर्थशास्त्रियों का मत है कि विश्व उत्पाद व्यापार जिसमें कि गत अप्रैल में 3.3 प्रतिशत वृद्धि की भविष्यवाणी की गयी है, उसमें वास्तव में महज 2.8 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। इतना ही नहीं अर्थशास्त्रियों ने सन् 2016 के लिए भी वृद्धि दर के 4 प्रतिशत से घटाकर 3.9 प्रतिशत आ जाने की बात कही है। उनका कहना है कि इस प्रकार के पुनरीक्षण की वजह सन् 2015 की पहली छमाही में विश्व अर्थव्यवस्था पर पड़ता दबाव है, जिसमें चीन, ब्राजील व अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं से आयात की घटती मांग, तेल एवं अन्य प्राथमिक उत्पादों की घटती कीमतें और विनिमय दर में अत्यधिक उतार-चढ़ाव शामिल हैं।

वित्तीय बाजारों में अस्थिरता, अमेरिका का वित्त नीति को लेकर लगातार बदलता नजरिया, उसके हालिया मिश्रित आर्थिक आंकड़े और वर्ष की दूसरी छमाही और उसके बाद घटते व्यापार ने विश्व अर्थव्यवस्था पर संकट के बादल छा दिए हैं। यदि वर्तमान अनुमान सटीक बैठते हैं तो सन् 2015 ऐसा लगातार चौथा वर्ष होगा, जिसमें कि वार्षिक व्यापार वृद्धि दर 3 प्रतिशत से नीचे होगी और यह चौथा वर्ष होगा जब मोटे तौर पर व्यापार भी उसी दर से बढ़ेगा, जिस दर से वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) बढ़ रहा है। गौरलतब है सन् 1990 के दशक और सन् 2000 के दशक के आरम्भ में इसकी दर दुगुनी तेज थी। विश्व व्यापार संगठन का मानना है कि वैश्विक उत्पादन (आउटपुट) तो अभी भी संतुलित गति से विस्तारित हो रहा है लेकिन विश्व अर्थव्यवस्था में गिरावट की वजह से जोखिम बढ़ता ही जा रहा है।

विश्व व्यापार संगठन के अनुसार, बढ़ते जोखिमों की वजहें हैं उभरती एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उम्मीद से ज्यादा तीव्रता से आयी मंदी, अमेरिकी फेडरल रिजर्व द्वारा ब्याज दर बढ़ाने की आशंका के चलते असंतुलित वित्तीय प्रवाह और यूरोप में आए शरणार्थी संकट से जुड़ी अनपेक्षित लागत। संगठन के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अप्रैल 2015 में जब आखिरी भविष्यवाणी की गयी थी, उस समय सन् 2014 की चौथी तिमाही के आंकड़ों से प्रतीत हो रहा था कि विश्व व्यापार और इसकी क्षमता में वृद्धि हो रही है। परंतु सन् 2015 की पहली छमाही के नतीजे उम्मीद से कमतर रहे। इसकी वजह थी तिमाही वृद्धि दर का नकारात्मक रहना। पहली और दूसरी तिमाही में औसतन 0.7 प्रतिशत ऋणात्मक रही।

तिमाही दर में गिरावट के बावजूद सन् 2015 की पहली छमाही में सालाना दर के हिसाब से वार्षिक व्यापार वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत रही थी। पहली दो तिमाहियों में विकसित देशों में निर्यात वृद्धि दर कमोवेश स्थिर ही रही (पहली और दूसरी तिमाही में औसतन -02 प्रतिशत, परंतु विकासशील देशों में तो यह निश्चित तौर पर नकारात्मक (-1.9 प्रतिशत) रही। निर्यात में कमी वस्तुतः विकासशील देशों के आयात में कमी (-2.2 प्रतिशत) एवं विकसित देशों में आयात का कमोवेश स्थिर (0.1 प्रतिशत) की वजह से हुई थी।

विश्व व्यापार संगठन के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि व्यापार में वृद्धि देशों एवं अंचलों के पार; उतार-चढ़ाव से पटी रही। लंबी अवधि के ठहराव के बाद यूरोप में साल-दर-साल के हिसाब से विश्व के किसी अन्य अंचल के मुकाबले दूसरी तिमाही में सर्वाधिक तीव्र निर्यात दर 2.7 प्रतिशत दर्ज की गयी। इसके बाद उत्तरी अमेरिका में 2.1 प्रतिशत, एशिया 0.6 प्रतिशत, दक्षिण एवं मध्य अमेरिका 0.4 प्रतिशत और अन्य अंचल जिनमें अफ्रीका, राष्ट्रमंडल के स्वतंत्र राष्ट्र एवं मध्यपूर्व शामिल हैं, में यह वृद्धि - 0.1 प्रतिशत रही। आंचलिक वृद्धि दर में निर्यात के बजाय आयात में अधिक विषमता दिखायी पड़ी। उदाहरणार्थ जहां उत्तरी अमेरिका में सकारात्मक वृद्धि दर 6.5 प्रतिशत थी, वहीं एशिया में यह 3.1 प्रतिशत और यूरोप में 1.6 प्रतिशत थी। दक्षिण एवं मध्य अमेरिका में 2.3 प्रतिशत तथा अन्य क्षेत्रों में 3.1 प्रतिशत की गिरावट आयी। इन सबके चलते विश्व व्यापार संगठन का अनुमान है कि विश्व व्यापार में सन् 2015 में 2.8 प्रतिशत एवं सन् 2016 में 3.6 प्रतिशत की दर से वृद्धि अनुमानित है।

अनुमान के अनुसार विकसित देशों के उत्पादन व निर्यात, दोनों में वृद्धि के क्रमशः 3.1 प्रतिशत एवं 3.2 प्रतिशत रहने की संभावना है, जबकि विकासशील देशों में इस वर्ष 2.8 प्रतिशत से अगले वर्ष 5.2 प्रतिशत तक पहुंच जाने का अनुमान है। वैसे वे एशिया की अर्थव्यवस्था में गिरावट की बात भी कर रहे हैं। इसकी वजह है चीन की अर्थव्यवस्था में आयी मंदी। उनके अनुसार एशिया में; आयात में अत्यधिक गिरावट आ सकती है। इस गिरावट में मशीनरी के आयात से लेकर खनिज आयात तक शामिल हैं। वहीं दूसरी ओर खाद्यान्न के आयात में असाधारण तेजी आने की संभावना जतायी जा रही है। विकासशील विश्व में आ रही मंदी के लिए चीन से भी ज्यादा ब्राजील को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है, क्योंकि वहां की जीडीपी ठहर-सी गयी है।

विश्व व्यापार संगठन के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि इस सबके घटित होने की आंशिक वजह अमेरिकी डॉलर के मूल्य में 15 प्रतिशत तक की असामान्य वृद्धि भी है। उनके अनुसार वर्तमान में सामान्य कारोबार तथा विश्व व्यापार के मूल्य में डॉलर की शर्तों और अमेरिकी मुद्रा के मूल्य का विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरण के लिए इस वर्ष जुलाई में डॉलर के हिसाब से जर्मनी के निर्यात और आयात दोनों में 14 प्रतिशत की गिरावट आयी, लेकिन यूरो के हिसाब से उनमें 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। ❑

मत-सम्मत

नया नहीं सम्प्रदायों का राजनैतिक इस्तेमाल

❑ अरुण तिवारी

आजादी की जंग का काला हिस्सा यह है कि इस दौरान की ब्रितानी और हिन्दुस्तानी राजनीति...पूरी की पूरी मजहबी पक्ष-विपक्ष में खड़े होकर गढ़ी गयी। वह चाहे मुसलिम लीग हो या फिर जनसंघ, एक सम्प्रदाय विशेष के नाम पर राजनीति करना, सम्प्रदाय का राजनैतिक इस्तेमाल ही है।

आमजन के लिए मजहब, आस्था का विषय है, धार्मिक-राजतांत्रिक सत्ता के लिए वर्चस्व का, मीडिया के लिए रेटिंग व पूर्वाग्रह का और वर्तमान भारतीय नेताओं के लिए वोट की बंदरबांट का। हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाइयों के बीच कुछ सांस्कृतिक-वैचारिक भिन्नता हो सकती है? ऐसी भिन्नता तो दक्षिणपंथी, वामपंथी, समाजवादी और गांधीवादियों के बीच भी है। क्या वे एक-दूसरे के लिए असहनीय हैं? नहीं, तो क्या दुनिया का कोई मजहब ऐसा भी है, जो दूसरे मजहब को सहन न करने की शिक्षा देता हो? नहीं, तो फिर निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि मजहबी असहिष्णुता दर्शाने के कारण कुछ और हैं। वैचारिक-सांस्कृतिक भिन्नता में छोटे-मोटे द्वंद्व कोई खास बात नहीं, किन्तु एक-दूसरे को न सह पाने का संदेश देना, निश्चित ही मजहब के गैरमजहबी इस्तेमाल के कारण ही हैं।

अतीत पर गौर कीजिए कि यदि राजनैतिक इस्तेमाल की तमन्ना न होती, तो सोमनाथ मंदिर से लेकर बाबरी मसजिद तक को ध्वस्त करने के राजनैतिक प्रयास न होते। जमशेदपुर, मुम्बई, सूरत, अहमदाबाद, भोपाल, कानपुर, मुरादाबाद, अलीगढ़, आगरा, मुजफ्फरपुर और मेरठ के हाशिमपुरा, मलियाना आदि जगहों में घटे शर्मनाक दंगे न घटते; गुलाम अली की आवाज सुनने से शिवसेना को ऐतराज न होता; प्रतिक्रिया में दिल्ली के मुख्यमंत्री गुलामअली को दिल्ली में मंच देने का वक्तव्य न देते। बात राजनैतिक न होकर देशभक्ति की होती, तो पाकिस्तान और बांग्लादेश से एक-एक इंच जमीन वापस लेने का घोष करने वाले, भारत की लाखों वर्ग किलोमीटर जमीन दबाये बैठे चीन को सबसे पहले आंखें दिखाते। यदि ऐसा न होता, तो बांग्लादेश से भारत आये भिन्न-धर्मी शरणार्थियों की गिनती, सिर्फ मुसलमान के रूप में नहीं होती। नित नई पाबंदियां तथा तालिबानी, फियादिन व जिहादी हमलों का नये वैश्विक चित्रों का संदेश क्या है?

जंग-ए-आजादी का दर्द : यह गौर करने की बात है कि जब-जब हिन्दू-मुसलिम प्रतिनिधि राजनैतिक दलों या संगठनों द्वारा साझा करने की कोशिश हुई, उसके बाद अक्सर माहौल बिगाड़ने की कोशिशें भी हुईं; नतीजे में साम्प्रदायिक ताकतें, ताकतवर होकर उभरीं। याद कीजिए वर्ष 1905; बिना किसी तरह का मजहबी ख्याल मन में लाये भारत हिन्दू और मुसलमान एक कौम...एक सांस होकर जंग-ए-आजादी में जुटी थी कि लॉर्ड कर्जन, मजहबी आधार पर बंगाल के बंटवारे का प्रस्ताव ले आया। 1906 में मुसलिमों के लिए पृथक् निर्वाचक मंडल की मांग को मंजूर कर लॉर्ड मिंटो ने साम्प्रदायिक विभेद की अपनी कोशिश को आगे बढ़ाना जारी रखा। मुसलिमों के लिए अलग सीटों के आरक्षण को क्या कहेंगे? इन सीटों पर कांग्रेस और मुसलिम लीग के एक साथ चुनाव लड़ने को असफल प्रयास के नतीजे, इन सीटों पर कांग्रेस को महज एक सीट और दंगे के रूप में सामने आये। 1927-28 में कांग्रेस द्वारा मुसलिम लीग की मांगों को पहले मानना और फिर नेहरू रिपोर्ट के जरिए पलट जाना। तीन-तीन गोलमेज सम्मेलनों का विफल रहना।

यह तो सिर्फ कुछ नजीर भर हैं, आजादी की जंग का काला हिस्सा यह है कि इस दौरान की ब्रितानी और हिन्दुस्तानी राजनीति...पूरी की पूरी मजहबी पक्ष-विपक्ष में खड़े होकर गढ़ी गयी। वह चाहे मुसलिम लीग हो या फिर जनसंघ, एक सम्प्रदाय विशेष के नाम पर राजनीति करना, सम्प्रदाय का राजनैतिक इस्तेमाल ही है। लाला लाजपतराय ने लाहौर के अखबार ट्रिब्यून में तीन लेखों की शृंखला लिखकर, पंजाब और बंगाल की मांग पेश कर दी। उन्होंने तो यहां तक मान लिया था कि अब हिन्दू और मुसलमान एक साथ नहीं रह सकते।

दंगेगवाह : भारत में दंगों का इतिहास देखिए। मजहबी आधार पर किसी मुल्क का विभाजन और फिर दंगे! आखिर ऐसा भी कहीं हुआ है? वर्ष 1947—भारत में हुआ। 1961 और आजादी के बाद का दूसरा चुनाव उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि प्रदेशों में प्रगतिशील तत्त्वों द्वारा एकजुट विपक्ष के रूप में उभरने की प्रक्रिया चल रही थी। दूसरी ओर केरल में कम्युनिस्ट पार्टी के खिलाफ कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और मुसलिम लीग ने साझा कर लिया। 1961 और 1964 में फिर बड़ा साम्प्रदायिक दंगा करा दिया गया। नतीजा? दंगे की प्रतिक्रिया में मजलिस मुसलिम मुसाबरात का गठन हुआ। 1969 में तो जैसे साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ ही आ गयी। रांची, जमशेदपुर, अहमदाबाद, जलगांव आदि में इंसानियत शर्मसार हुई। भारतीय जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनसंघ पर उंगली उठी; नतीजे में मजलिस मुसलिम मुसाबरात का विस्तार हुआ और 1972 के चुनाव में भारतीय जनसंघ, एक शक्तिशाली राजनैतिक दल के रूप में उभरा।

कम नहीं कांग्रेस : 1977 के बाद क्या हुआ? वर्ष 1977 में चुनाव हारने के बाद कांग्रेस की कट्टरता गुंडागर्दी और

आपराधिक शक्ति के तौर पर सामने आयी। उसके 'गरीबी हटाओ' नारे और समाजवाद चेहरे का भ्रम टूटा, तो इंदिरा गांधी ने भी हिन्दू कार्ड को अपनी ताकत बनाने की कोशिश की। शेख अब्दुल्ला की मृत्यु के बाद जम्मू-कश्मीर घाटी में हुए चुनावों में उग्र हिन्दू एजेंडे के साथ चुनाव लड़ा। नतीजा? कश्मीर में फारूक अब्दुल्ला की नेशनल कांफ्रेंस जीती, किन्तु हिन्दू वोट वाली जम्मू घाटी में कांग्रेस (आई) ने सबका सफाया कर दिया। जनसंघ को भी एक सीट नहीं मिली। इसी तरह पंजाब में अकाली दल को निपटाने के लिए कांग्रेस ने जरनैल सिंह भिंडरा वाले के आतंकवाद को फलने-फूलने दिया। फिर एकता और अखंडता के नारे को उछाल कर सिखों को राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरे के रूप में पेश किया गया। हिन्दू समाज में व्यापक प्रतिक्रिया स्वाभाविक थीं। सोची-समझी रणनीति के तहत् कांग्रेस ने 'ऑपरेशन ब्लू स्टार' करा दिया और हिन्दू मानस को तुष्ट करने का श्रेय लूट लिया। यह बात और है कि हिन्दू वोट हथियाने की इस जुगत में इंदिरा गांधी की जान चली गयी। इस खेल से गुस्साये दो सिख अंगरक्षकों ने उन्हें मौत के मुंह में पहुंचा दिया। राजनैतिक लाभ, राजीव गांधी को मिला।

सत्ता में आते ही उन्होंने हिन्दुओं की प्रिय गंगा की सफाई हेतु 'गंगा कार्य योजना' घोषित कर डाला। शाहबानो प्रकरण में मुसलिम समुदाय के सामने समर्पण से हिन्दुओं में नकारात्मक प्रतिक्रिया होती दिखी, तो स्वयं श्री राजीव गांधी, उनके आंतरिक सुरक्षा राज्यमंत्री अरुण नेहरू और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री वीर बहादुर सिंह ने मिलकर राम जन्मभूमि स्थल का ताला खुलवा कर, कट्टरवादियों के लिए एक नया जिन्न खड़ा कर दिया। गौर कीजिए कि इसी के बाद रामजन्म भूमि मुक्ति आंदोलन खड़ा हुआ। इसी समय दूरदर्शन पर रामानंद सागर रचित 'रामायण' धारावाहिक शुरू हुआ। इसी बीच 1989 के चुनाव आ गये और राजीव गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने हिन्दुवादी संगठनों के साथ मिलकर बाबरी मसजिद के पास राम जन्मभूमि मंदिर का शिलान्यास करा दिया। किन्तु तब तक जनसंघ से ज्यादा आक्रामक तेवर वाली भारतीय जनता पार्टी का अवतार हो चुका था। कांग्रेस के धर्मोन्मादी रुख से वामपंथी नाराज थे। लिहाजा, कांग्रेस के हाथ से बाजी निकल गयी।

जाति-धर्म-राजनीति : बढ़ता घाल-मेल : 1989 में विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाला राष्ट्रीय मोर्चा, भाजपा और वामपंथी दलों के समर्थन से सरकार बनाने में सफल रहा। विश्वनाथ प्रताप सिंह ने मंडल आयोग की सिफारिश के अमल पर फैसला किया, तो अगड़ों की खिलाफ प्रतिक्रिया को देखते हुए भाजपा ने समर्थन खींच लिया; सरकार गिरा दी। जनता ने दंगों का दर्द झेला। जनता दल भी बंट गया। किन्तु जातिवाद के नये जिन्न ने पिछड़ी-दलित जातियों, जनजातियों और अल्पसंख्यकों को नई जगह दी। लिहाजा, हिन्दू कट्टरता को फलने-फूलने के पर्याप्त कारण विद्यमान थे। नतीजे में जहां एक ओर जाति व अल्पसंख्यक गठजोड़ की राजनीति ने मुलायम सिंह, काशीराम, कर्पूरी ठाकुर, लालू यादव, शरद यादव, नीतीश कुमार, रामविलास पासवान के अलावा कई मुसलिम दलों और नेताओं को भी जन्म दिया, वहीं प्रतिक्रिया में साध्वी उमा भारती, साध्वी ऋतम्भरा, योगी आदित्यनाथ जैसे हिन्दू चोला पहनने वाली कई शख्सियतें राजनैतिक हो गयीं। इसी संघ-भाजपा और विश्व हिन्दू परिषद ने बाद में केन्द्र में तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव और उत्तर प्रदेश में तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह से सांठगांठ कर बाबरी मसजिद ढहा दी। फिर साम्प्रदायिक सद्भाव टूटा। भारत ने फिर मार-काट का दर्द झेला। इससे जहां भारतीय जनता पार्टी एक ओर पूरी तरह कट्टर हिन्दू पार्टी के रूप में उभरी, वहीं एक जिम्मेदार पार्टी के तौर पर भाजपा की छवि को गहरा धक्का भी लगा।

उदारवाद और कट्टरता का कॉकटेल : तब भाजपा ने अटल बिहारी बाजपेई के उदारवादी चेहरे और आडवाणी के कट्टरवादी चेहरे के कॉकटेल का प्रयोग करने में ही भलाई समझी। अटल, प्रधानमंत्री बने और आडवाणी गृहमंत्री। गौर कीजिए कि कॉकटेल के इसी सबक से सीखते हुए वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में भाजपा किसी एक छवि के साथ आगे आने से बनी। इस चुनाव में भाजपा की पूरी छवि, श्री नरेन्द्र मोदी के एकमात्र आइने में उतार दी गयी। मोदी की भी कई छवियां गढ़ी गयीं। एक छवि, गुजरात के विकास मॉडल को सामने रख उकेरी गयी विकास पुरुष की छवि थी। दूसरी छवि, पिछड़े वर्ग के जातिवादी मोदी की थी। तीसरे छवि, 'मैं आया नहीं हूं, मुझे गंगा मां ने बुलाया है' तथा रात्रि में योग-ध्यान करने वाले, मां का आशीष लेने वाले सनातनी हिन्दू की थी। चौथी छवि, एक चाय वाले से प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार की ऊंचाई तक पहुंचने वाले निर्णायक, जुझारू, निर्भीक व बेदाग और गरीबी से उठकर आसमान छू लेने वाले नेतृत्व की छवि थी। कांग्रेस के कारपोरेट घोटाले वाले शासनकाल और सोनिया, राहुल और मनमोहन सिंह की तुलना में इन चारों छवियों ने बहुस्तरीय असर किया। मोदी के साथ-साथ भाजपा भी जीती, किन्तु हिन्दुवाद का कार्ड उसने छोड़ा नहीं। कभी जनगणना में मुसलिमों की आबादी में वृद्धि का आंकड़ा पेश कर, तो कभी साक्षी महाराज, कभी योगी आदित्यनाथ महाराज, कभी शंकराचार्य द्वारा साईंबाबा के हिन्दू-मुसलमान होने का विवाद और कभी गोमांस का निर्यात बंद कर और कभी जैन पर्युषण पर्व पर बूचड़खाने और मांस बिक्री पर प्रतिबंध लगाकर एजेंडे को मरने नहीं दिया। बिहार चुनाव के बाद अब राम मंदिर और असहिष्णुता को मुद्दा बनाकर पेश करने का प्रयास, हम सभी के सामने है ही।

पश्चिमीकरण से असुरक्षा और पहचान के निशान : सब जानते हैं कि वैश्विक उदारवाद और डिजीटल उदारवाद के इस दशक में जिला, राज्य या राष्ट्र को एक जाति, सम्प्रदाय या वर्ग विशेष की संकीर्ण

दीवारों वाले बांधने की कोशिश करना बेमानी है; बावजूद इसके जातीय असुरक्षा के कारण उपजी कट्टरता के कारण, आज कई स्थानों पर उत्तर-पूर्व से लेकर गुजरात तक जातीय आंदोलन हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय महासभाएं हैं, आरक्षण विरोधी अनशन हैं, हिन्दू-मुसलिम विरोधी नारे हैं, डीएनए के जुमले हैं, और जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान विरोधी नारों को गतिमान रखकर, हिन्दू वोट ध्रुवीकरण के छिपे एजेंडे हैं। अपनी-अपनी पहचान दिखाने के प्रयास भी कम नहीं।

पहचान के इन निशानों के लिए बेचैनी इसलामी समाज में भी बढ़ी है। पढ़े-लिखे मुसलिम युवाओं में भी दाढ़ी, टोपी और ऊंचे पायजामों का चलन बढ़ा है। हो सकता है कि भारत में बाबरी मसजिद ढहाये जाने के बाद अल्पसंख्यक मन की असुरक्षा ने इस प्रवृत्ति को हवा दी हो, किन्तु हकीकत यह है कि पश्चिमी तौर-तरीकों ने हिन्दू और मुसलमान... दोनों की पारम्परिक जीवन शैली, संस्कार और ज्ञानतंत्र में घुसपैठ कर इन्हें जिस तरह ध्वस्त करना शुरू किया है, इससे उपजी असुरक्षा भी कट्टरता का एक बड़ा कारण है। आयतुल्ला खुमैनी के नेतृत्व में उभरी ईरानी कट्टरता के दौर को याद कीजिए। शिया-सुन्नी...दोनों फिरकों पर पश्चिमीकरण का आघात बराबर है। खासकर, पश्चिमी मुल्कों के खिलाफ तनी आतंकवादी हरकतों को देखिए। ब्रिटिश मुसलमान छात्र से इस्लामिक स्टेट नामक संगठन द्वारा फिदायिन बनने की अपील करता वीडियो, काबुल में नाटो काफिले पर तालीबनी हमला; सब याद करते जाइए। दुनिया के तमाम इसलामी मुल्कों में घट रही घटनाओं का समग्रता से विश्लेषण कीजिए; आप गारंटी से पायेंगे कि हिन्दू-मुसलिम दोनों की कट्टरता के कारण, भीतरी से ज्यादा बाहरी हैं। स्पष्ट है कि मजहबी खेमों में खड़े होकर मुद्दे की खाल खींचने से हल नहीं निकलेगा। निवेदन है कि यदि मजहबी कट्टरता से निजात पानी है, तो बाहरी कारणों से निजात पाने की कोशिश करनी चाहिए। लोकतंत्र में यह सम्भव है। क्या हम करेंगे? ❑

आउट-डेटेड हो गयी है राजनीति

❑ **विनोबा**

आज हालत ऐसी है कि एक नैतिक आवाज उठे और सारा देश उसका अनुसरण करे, ऐसी कोई संस्था अथवा व्यक्ति देश में दीखता नहीं। भिन्न-भिन्न दलों के नेता जनता के सम्मुख जाकर एक-दूसरे की बातों का खंडन करते हैं। निष्क्रिय जनता में इससे किसी प्रकार क्रियाशीलता पैदा नहीं होती। नैतिक नेतृत्व का पूरी तरह अभाव है। इसके कारण देश में एक प्रकार की निष्क्रियता, शून्यता और खालीपन आ गया है और जनता बावली बन गयी है। कहां जाना, क्या करना, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा है। गांधीजी की सलाह मानी गयी होती तो ये दिन न आते। उनको राजनीति ही चलानी होती तो वे मरने के पूर्व देश को आदेश क्यों देते कि कांग्रेस का स्वराज्य प्राप्ति का काम पूरा हो गया, अब उसे आम जनता की सेवा में लग जाना चाहिए और 'लोकसेवक-संघ' बनना चाहिए? कांग्रेस के लिए यह उनका वसीयतनामा था। अपनी मृत्यु के एक दिन पहले यह लिखा गया था। इसका अर्थ यही था कि यदि आप लोकसेवक बनेंगे, तो सत्ताधारियों पर आपका प्रभाव रहेगा। सत्ता का स्थान दूसरे नंबर पर रहेगा, पहले नंबर नहीं। प्रथम लोकसेवक होगा, सेवा रानी होगी और सत्ता उसकी दासी बनेगी।

गांधीजी के जाने के बाद राजनीति को अपनी जीवन-निष्ठा से प्रभावित करने के बदले हम स्वयं ही राजनीति से प्रभावित हो गये, चौंधिया गये। राजनीति के प्रभाव की तेजी हमें भी उसमें बहा ले गयी। आज हमारी जीवन-निष्ठा का कोई भी प्रभाव राजनीति पर नहीं रह गया। उलटे हमारे जीवन पर राजनीति का प्रभाव स्पष्ट है। गांधीवादी कहलाने वाले राजनीतिक लोग आज गांधी के मार्ग पर नहीं हैं। वे नाना फड़नवीस के कदमों पर चलते हुए दीखते हैं। नतीजा यह निकलता है कि दूसरे को सुधारने के बदले हम ही बिगड़ते जा रहे हैं।

अंग्रेज का हमला होने वाला था। बोरघाट में अंग्रेज आ पहुंचे थे। पूना में पेशवा साथियों को लेकर तैयार थे। सोच रहे थे कि सिर देकर मुकाबला करना पड़ेगा। नाना फड़नवीस ने पूना को धधकती-धरा बनाये रखने की तैयारी कर रखी थी। शिंदे कितनी सेना लायेगा? भोसले कितनी सेना लायेगा? ऐसी बातें चल रही थीं।

'हम इतनी सेना लायेंगे, इसके बदले हमें क्या मिलेगा?' 'खानदेश अमुख भाग आपको मिलेगा।' 'हम इतनी सेना लायेंगे, उसके बदले में हमें क्या मिलेगा?' 'आपको अमुक भाग मिलेगा।' आज दिन तक ऐसा ही चलता आ रहा है। नाना फड़नवीस के जमाने में जो कुछ बातें चलती थीं, वे ही बातें आज चल रही हैं। 'मुझे कितनी सीटें मिलेंगी? कौन-सा पद मिलेगा?'

मैं कहना यह चाहता हूं कि गांधीजी आये और गये, तो भी परिस्थिति जैसी की तैसी है। नाना फड़नवीस के जमाने में जो कुछ चलता था, उससे आज कहां भिन्न राजनीति चल रही है? आज राजनीति की ताकत ही क्या है?—क्षयकारिणी शक्ति। जिस पुण्य का संचय हुआ था, वह क्षीण हो रहा है। स्वराज्य के मिलने के बाद जिन्होंने सत्ता चलायी, उनमें से कितने ऐसे हैं, जिनके पूर्व-पुण्य में क्षय के बदले वृद्धि हुई हैं? ऐसे बहुत थोड़े होंगे, जिन्होंने महाराज जनक की तरह सत्ता को पचाया हो। बाकी लोगों का पुण्य तो क्षीण ही हो रहा है।

इसलिए जब कोई मुझसे पूछता है कि इस राजनीति को निर्मल करने की कोशिश क्यों नहीं करते, तो मैं कहता हूं कि मैं उसे खतम ही करना चाहता हूं। विज्ञान के इस युग में अब पालिटिक्स (राजनीति) आउट-डेटेड—जीर्ण-शीर्ण हो गया है। ❑

डिजिटल इंडिया का वर्तमान सच

❑ सौमित्र राय

मध्य प्रदेश की 5.23 करोड़ की आबादी में हर पांचवें व्यक्ति तक ही मोबाइल फोन पहुंचा है, जबकि राज्य के चार बड़े शहरों में संचार के सबसे लोकप्रिय साधन की संख्या कुछ आबादी से ज्यादा है। मोबाइल फोन अब विकास के निर्धारित मानकों में से एक बन चुका है। भारत में लगभग 95 करोड़ मोबाइल उपयोगकर्ताओं में ग्रामीण उपयोगकर्ता केवल 42 प्रतिशत ही हैं। वहीं मध्य प्रदेश में यह पहुंच राष्ट्रीय औसत से आधे से भी कम है। वैसे शहरों के ठीक उलट गांवों में बेसिक टेलीफोन की उपलब्धता भी महज पांच फीसदी से कुछ अधिक है। यानी गांवों में संपर्क के लिए मोबाइल के सिवा दूसरे विकल्प न के बराबर हैं।

मोबाइल फोन की पहुंच के मामले में शहरों और गांव के बीच फासले का एक प्रमुख कारण गांवों में कनेक्टिविटी का न होना है। दूरदराज के आदिवासी अंचलों में कस्बे से बाहर निकलते ही मोबाइल फोन का कवरेज चला जाता है। डिंडोरी के समनापुर जनपद से 50 किलोमीटर दूर शौलाटोला में लोग गांव से कुछ दूर लगे पेड़ के नीचे खड़े होकर मोबाइल पर बात करने की कोशिश करते हैं। नेटवर्क मिला तो ठीक, वरना उन्हें तीन किलोमीटर दूर पहाड़ चढ़ना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी की संचार क्रांति के दौर में यह बात हास्यास्पद लग सकती है, लेकिन कुछ कंपनियों के मोबाइल नेटवर्क महानगरीय उपयोगकर्ताओं को भी इसी तरह की मशक्कत करने पर मजबूर कर देते हैं। मुम्बई में रहने वाले मेरे एक मित्र अक्सर खिड़की से लटककर मुझे फोन किया करते थे। एक दिन गिरते-गिरते बचे तो कंपनी ही बदल ली। अनेक आदिवासी गांवों की स्थिति शौलाटोला से भी बदतर है।

डिंडोरी से पश्चिम की ओर चलें तो बुंदेलखंड में पन्ना टाइगर रिजर्व के बफर जोन में बसे गांव कटरिया में लोगों ने कनेक्टिविटी के लिए गांव के बाहर एक चबूतरे का सहारा लिया है। हैरत की बात यह है कि समूचे गांव में मोबाइल फोन का नेटवर्क न होने के बावजूद चबूतरे पर 3जी कनेक्टिविटी तक मिल जाती है। टाइगर रिजर्व के बफर जोन में होने के कारण वह विभाग वहां बिजली के खम्भे लगाने की इजाजत नहीं दे रहा है। वन ग्राम होने के कारण ही मोबइल टॉवर खड़ा करने में भी परेशानी है। कटरिया गांव के लोगों के पुनर्वास और उनकी हकदारियों की गारंटी लेने को कोई तैयार नहीं। हम यहां इस बात को नहीं भूल सकते कि एक सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन, जीवनयापन के साधन और संसाधनों के साथ ही अभिव्यक्ति की आजादी पर भी कटरिया के लोगों का उतना ही हक है, जितना शहरी लोगों का।

कनेक्टिविटी राज्य सरकार का नहीं केन्द्र का विषय है, जिसके पास दूरसंचार और ट्राई (दूरसंचार नियामक प्राधिकरण) जैसी भारी-भरकम ढांचागत संरचनाएं हैं। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह भी है कि गांवों में खराब कनेक्टिविटी के कारण मध्य प्रदेश की 5.2 करोड़ की आबादी में से अधिकांश के पास न तो सरकार की बात ही पहुंच पा रही है और न ही उनकी आवाज सरकार तक पहुंच रही है। वैसे बीते 10 साल में केन्द्र सरकार को स्पेक्ट्रम और लाइसेंस फीस के रूप में अरबों की आमदनी तो हुई, लेकिन उपयोकर्ताओं को जरूरत के हिसाब से ढांचागत सुविधाएं नहीं मिलीं। एरिक्सन कंज्यूमर लैब की हालिया रिपोर्ट कहती है कि भारत में 60 फीसदी से ज्यादा लोगों को मोबाइल नेटवर्क न मिलने की समस्या पेश आ रही है। इनमें भी अधिकांश लोगों को घरों के भीतर कनेक्टिविटी न मिलने की शिकायत है। इसका मतलब यह है कि सरकार के स्पेक्ट्रम प्रबंधन में बड़ी खामियां हैं। साथ ही यह भी साफ नहीं है कि दूरसंचार कंपनियां अपने पास मौजूद स्पेक्ट्रम का कितनी कुशलता से उपयोग कर रही हैं। मध्य प्रदेश के डिंडोरी, बालाघाट, बुंदेलखंड, छिंदवाड़ा जैसे जिलों में मोबाइल टॉवरों के बीच की दूरी 30 से 50 किलोमीटर है। भारत में दूरसंचार घनत्व तेजी से संतृप्तता के स्तर पर आ रहा है। यहां से आगे का रास्ता गांव की ओर निकलता है, जहां पैर पसारने की काफी गुंजाइश है।

वहीं दूसरी ओर दूरसंचार कंपनियों का सारा जोर शहरों पर केन्द्रित है, जहां मोबाइल कॉल और इंटरनेट के रूप में मोटी कमाई की खासी सम्भावनाएं मौजूद हैं। ट्राई और इंटरनेट एण्ड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया (आईएमएआई) की रिपोर्ट के अनुसार मध्य प्रदेश में 6 करोड़ मोबाइलधारकों में तकरीबन हर तीसरा शख्स स्मार्ट फोन चला रहा है। इनमें से अधिकांश इंटरनेट भी चलाते होंगे। हालांकि, एरिक्सन की रिपोर्ट में 63 प्रतिशत उपयोगकर्ताओं ने कहा है कि उन्हें 3जी के शुल्क पर 2जी सेवाएं मिल पा रही हैं। गांवों की बात छोड़ दें तो शहरों में भी इंटरनेट की रफ्तार एक समान नहीं है। कम से कम उतनी तो बिलकुल नहीं, जितना कि सेवा प्रदाता दावा करती हैं। दूसरी तरफ ट्राई के पास भी इन दावों को परखने का कोई पुख्ता तंत्र नहीं है। जब तक कोई शिकायत न करे, तब तक न तो ट्राई को पता चलेगा और न ही टेलीकॉम कंपनियों को जमीनी हकीकत मालूम पड़ेगी।

केन्द्र सरकार ने डिजिटल इंडिया मिशन के तहत ढाई लाख पंचायतों को ब्रॉडबैंड इंटरनेट कनेक्शन से जोड़ने का लक्ष्य रखा है। बीते चार साल से नेशनल ऑप्टिकल फाइबर नेटवर्क (एनओएफएन) के तहत तार बिछाने का काम चल रहा है। इस साल मार्च तक इसके तहत 50 हजार पंचायतों को ऑप्टिकल फाइबर से जोड़ा जाना था, लेकिन अभी तक यह काम हो नहीं पाया है। ऐसे में दिसंबर 2016 तक इसके पूरा होने की उम्मीद कम ही है। इसका खामियाजा मध्य प्रदेश के दूर-दराज के आदिवासी अंचलों को ज्यादा भुगतना पड़ रहा है, जहां जनपद के पंचायतों की औसत दूरी 30 किलोमीटर से ज्यादा है। डिंडोरी के तहसील कार्यालय में पंचायत पदाधिकारी देर रात तक जानकारियां फीड करते हुए देखे जा सकते हैं, क्योंकि उनके गांवों में कनेक्टिविटी नहीं है। खुद समनापुर जनपद का लोकसेवा केन्द्र आये दिन फाइबर लाइन कटने से हलाकान है। इस सूरतेहाल के पीछे अकेला कोई एक विभाग जिम्मेदार नहीं है। यह विभागीय समन्वय का मसला है। मिसाल के लिए पन्ना के जरधोबा पंचायत पदाधिकारियों को लैपटॉप तो दिये गये, लेकिन कनेक्टिविटी नहीं होने से वे रोजमर्रा के काम की जानकारियां कम्प्यूटर पर दर्ज करने के लिए जनपद ही आते हैं।

इन हालात में देश के दूरसंचार मंत्री का यह बयान और भी दिलचस्प हो जाता है, जिसमें वे भारत में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या अगले दो साल में मौजूदा 30 करोड़ से बढ़ाकर 50 करोड़ के पार ले जाने का दावा करते हैं। हालांकि, इस आंकड़े को छूने के लिए सरकार को खास मशक्कत नहीं करनी है, क्योंकि स्मार्टफोन उपयोग करने वालों की संख्या 35 फीसदी से अधिक गति से बढ़ रही है। असली चुनौती तो दूर-दराज के अंचलों तक इंटरनेट को पहुंचाने की है, जिसे दुरुस्त करने का सरकार के पास कोई पुख्ता रोडमैप अभी तक तैयार नहीं है। ❑

शिक्षा

'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' की प्रतिकूलता

❑ **डॉ. मधुसूदन दीक्षित**

यह अत्यन्त ही दुर्भाग्य की बात है कि देश की शैक्षिक व्यवस्था के लिए बनाया गया ऐतिहासिक कानून 'शिक्षा का अधिकार (आर.टी.आई.) अधिनियम 2009' अपने नाम के पूर्णतया विपरीत बच्चों से उनके शिक्षा के अधिकार को छीन रहा है।

इस खतरनाक स्थिति को समझना आवश्यक है कि जहां एक ओर देश में बच्चों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है वहीं दूसरी ओर निजी और सरकारी, दोनों स्कूल लगातार बंद होते जा रहे हैं। सरकारी स्कूल जहां बच्चों के अपर्याप्त नामांकन और खाली होते स्कूलों के कारण बंद होते जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर निजी स्कूल 'आर.टी.आई. अधिनियम' में दिये गये कठोर मापदंडों एवं मानकों को पूरा न कर पाने के कारण लगातार बंद कराये जा रहे हैं।

नेशनल इंडिपेन्डेन्ट स्कूल्स एलायन्स (NISA) के अनुसार शिक्षा का अधिकार अधिनियम में भौतिक सुविधाओं की अनिवार्यता की शर्तों एवं निजी स्कूलों की मान्यता के निर्धारित अन्य मापदंडों एवं मानकों को पूरा न कर पाने के कारण मार्च, 2014 तक जहां देशभर के 4,400 निजी स्कूल बंद कराये जा चुके हैं, वहीं 15,083 स्कूलों को बंद करने की राज्य सरकारों द्वारा नोटिस दी जा चुकी है। मान्यता के संबंध में इन कठिन मापदंडों एवं मानकों को पूरा करना, उन कम फीस वाले निजी स्कूलों, जो कि देश में काफी अधिक संख्या में हैं, के लिए अत्यन्त ही मुश्किल है।

उत्तर प्रदेश सरकार के 8 मई, 2013 के शासनादेश ने मान्यता के लिए 40 से अधिक विभिन्न शर्तें निर्धारित की हैं, जिन्हें अधिकतर प्राइवेट स्कूलों के लिए पूरा कर पाना कठिन है। यहां तक कि सरकारी स्कूल—जिनके पीछे सरकार का प्रबल आर्थिक सहयोग है—वो भी मान्यता के इन मानकों को 80 प्रतिशत तक नहीं पूरा करते हैं। उदाहरण के लिए शर्तें हैं : जैसे विद्यालय का निजी भवन या भवन की कम से कम 10 साल की लीज; प्रधानाचार्य, स्टॉफ व कक्षाओं के लिए अलग-अलग कमरे; 3 सालों तक फीस में बढ़ोत्तरी न करना और उसके पश्चात भी अधिकतम 10 प्रतिशत तक फीस बढ़ाना आदि। इस प्रकार के प्रतिबंध, यदि कठोरता से लागू किए जाएं, तो प्राइवेट स्कूल या तो सीधे बंद हो जायेंगे या शर्तों को न पूर्ण कर पाने की अनदेखी हेतु अधिकारियों में उत्कोच को बढ़ावा देंगे। कानून जब भी बनाया जाय, वह व्यवहारिक और जमीनी हकीकत पर आधारित होने चाहिए।

स्कूलों के बंद होने की बात काल्पनिक नहीं है, बल्कि आज हमारे समक्ष है। अगस्त 2015 में बेसिक शिक्षा अधिकारी, लखनऊ ने 108 स्कूलों को बंद करने का आदेश दिया, जबकि डिस्ट्रिक्ट इनफारमेशन सिस्टम ऑन एजूकेशन (DISE) के सरकारी डेटा के अनुसार लखनऊ जनपद में पहले ही 2010-11 में 407 से घट कर 2013-14 में सिर्फ 289 स्कूल बचे थे। ठीक उसी समय बच्चों की जनसंख्या 4 प्रतिशत प्रति वर्ष बढ़ी थी (सेंसेस के अनुसार) और जहां सरकार शिक्षा अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अंतर्गत 300 की जनसंख्या वाले आबादी के एक किलोमीटर के दायरे में कम से कम एक विद्यालय स्थापित करने के अपने स्वयं के दायित्व को पूरा करने में असमर्थ→

धोखे का बीमा कहां होगा?

❑ ज्योत्सना सिंह

फसल बीमा और विद्युत के अलावा अब भवन निर्माण कार्य जैसे अनेक क्षेत्रों में मौसमी आंकड़ों की आवश्यकता पड़ने लगी है। एक राष्ट्रीय एजेंसी ऐसी विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध नहीं करवाती, अतएव निजी कंपनियां इस उभरते बाजार पर कब्जा तो करेंगी ही।

भारत मौसम विभाग ने इस वर्ष मानसून में कमी की घोषणा की थी। वहीं दूसरी ओर नोएडा स्थित निजी मौसम विभाग की भविष्यवाणी ही सटीक सिद्ध हुई। यह किसी एक गलत अनुमान का मामला नहीं बल्कि एक बड़ी समस्या का लक्षण है। वर्तमान में निजी मौसम कंपनियों की संख्या बढ़कर 10 तक पहुंच गयी है। लेकिन अभी तक न तो उनकी निगरानी और न ही जवाबदेही तय करने के लिए कोई नियामक संस्था स्थापित हो पायी है। यह विशेषतः इसलिए जोखिमभरा है क्योंकि इन निजी भविष्यवेत्ताओं का जुड़ाव बीमा कंपनियों से है जो कि मौसम के आंकड़ों का उपयोग फसल की असफलता की स्थिति में किसानों के दावों के निपटारे के लिए करती है। वर्तमान ढांचा छल-कपट, भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी को बढ़ावा देता है। ऐसा राजस्थान के चुरु जिले में सामने आया भी है।

झूठे आंकड़े : सन् 2012 में चुरु में कम फसल हुई। इस बात से संतुष्ट होकर कि यह खराब मौसम के कारण हुआ है। किसान, सरकार द्वारा फसल बीमा के लिए अनुशंसित निजी कंपनी आईसीआईसीआई, लोंबार्ड के समक्ष अपने दावे लेकर पहुंचे। कंपनी ने यह कहते हुए उनके दावे रद्द कर दिए कि एक निजी कंपनी, नेशनल कोलेट्रल मैनेजमेंट सर्विस लि. (एनसीएमएल) द्वारा उपलब्ध कराए गए मौसम के आंकड़ों में बताया गया था कि फसल के दौरान तापमान और नमी का स्तर सामान्य था। जबकि किसान स्वयं भी एनसीएमएसएल द्वारा जिले में स्थापित स्वचालित मौसम केन्द्रों (ए.डब्ल्यू.एस.) से आंकड़ों की प्रति इकट्ठा करते रहे। अखिल भारतीय किसान सभा, चुरु के अध्यक्ष निर्मल प्रजापति का कहना है, ''हमें महसूस हुआ कि आईसीआईसीआई के पास उपलब्ध जानकारी झूठी है। इस पर राज्य सरकार ने हस्तक्षेप कर पुणे स्थित इंडियन इंस्टिच्यूट ऑफ मैट्रिओलॉजी से इन आंकड़ों पर विचार मांगे। उनके संस्थान का कहना था कि संस्थान के मौसम संबंधी आंकड़े उसी अवधि में किसानों द्वारा एकत्रित आंकड़ों से सामंजस्य रखते हैं।

→रही है। इस प्रकार नये स्कूल खोलना तो दूर की बात है, कई राज्यों ने हजारों ऐसे सरकारी स्कूलों को बंद कर दिया है जहां 20 से कम छात्र हैं और जिनको चलाते रखना आर्थिक रूप से कठिन है। जब सरकारी स्कूलों की कमी होती जा रही है तो उस एक्ट के नाम पर जो स्वयं बच्चों के शिक्षा के अधिकार का बीड़ा उठाए हैं, प्राइवेट स्कूलों को बंद करना वास्तव में बच्चों को शिक्षा के अधिकार से वंचित करना होगा।

शिक्षा अधिकार अधिनियम खासतौर पर गरीब बच्चों में शिक्षा के विकल्प के अधिकार को नष्ट कर रहा है क्योंकि इसके अंतर्गत मुख्यतः कम फीस वाले प्राइवेट स्कूलों को लक्ष्य बनाया जा रहा है, जो कि मान्यता की सख्त शर्तों को पूरा करने में असमर्थ होंगे। यह हास्यास्पद है कि बच्चों को स्वयं चुने हुए उन प्राइवेट स्कूलों को छोड़ने के लिए विवश किया जा रहा है, जो कि प्रायः सीखने के बेहतर परिणाम दे रहे हैं और उन्हें उन निकटतम सरकारी स्कूलों में दाखिला लेना पड़ रहा है, जिनके सीखने के स्तर अत्यन्त न्यून हैं और जो खुद भी उन मानकों पर खरे नहीं उतरते, जिनकी वजह से प्राइवेट स्कूलों को बंद किया गया था। यह तो बच्चों से उनके शिक्षा सीखने के अधिकार को छीनने के समान है, जो बच्चों को निम्नस्तरीय शिक्षा की ओर जाने को विवश करता है। जबकि शासकीय अधिकारी यह मानने को कभी तैयार नहीं होते कि सरकारी स्कूलों में शिक्षा का स्तर खराब है, ऐसे में इलाहाबाद हाईकोर्ट के 18 अगस्त, 2015 के फैसले ने अधिकारियों के इस सच के अनवरत इनकार की पोल खोल दी है। यह निर्णय इस बात की ओर साफ इशारा करता है कि सरकारी स्कूल तुच्छ क्वालिटी की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। चंद भौतिक सुविधाओं से संबंधित मानकों के नाम पर उन स्कूलों को बंद करने, जो बच्चों के जीवन को सुधार रहे हैं और बच्चों को कम गुणवत्ता की शिक्षा देने वाले सरकारी स्कूलों में पढ़ने पर मजबूर करने का मतलब है कि हम अभिभावकों की बुद्धिमता की अनदेखी कर रहे हैं, जो सीखने व गुणवत्ता को महत्त्व देती है।

निःसंदेह, कम फीस लेने वाले प्राइवेट स्कूलों की मूलभूत भौतिक सुविधाओं में सुधार की आवश्यकता है। सरकार को चाहिए कि वो कम फीस वाले प्राइवेट स्कूलों को शिक्षा अधिकार अधिनियम द्वारा निर्धारित मानकों को पूरा करने में मदद करे, क्योंकि यह कई गुना कम बजट वाले प्राइवेट स्कूल भारत के करोड़ों बच्चों को शिक्षित करने में सहयोग कर रहे हैं। यदि ये स्कूल नहीं होंगे तो सरकार को इन स्कूलों से विस्थापित बच्चों के लिए स्कूल तत्काल खोलने पड़ेंगे, जहां प्रति छात्र खर्च प्राइवेट स्कूलों से 20 से 25 गुना अधिक होगा। ❑

परिणामस्वरूप आईसीआईसीआई लोंबार्ड को किसानों को 250 करोड़ रुपये का बीमा देना पड़ा। किसानों को उनका मुआवजा तो मिल गया, लेकिन आंकड़ों में किस प्रकार हेराफेरी की गयी और इसके लिए कौन जिम्मेदार है, यह जानने के लिए किसी भी प्रकार की जांच नहीं की गयी। प्रजापत का कहना है कि निपटारे के दौरान आईसीआईसीआई ने दावा किया कि वे मौसम बताने वाली कंपनी को बदल देंगे। अगले साल मौसम के आंकड़े उपलब्ध करवाने के लिए अब वे स्कायमेट को ले आए हैं। लेकिन इससे किसानों की कोई मदद नहीं होगी। प्रजापति का कहना है, ''एमसीएमएसएल मौसम केन्द्र 24 घंटे आंकड़ों का रिकार्ड और सँभाल कर रखते थे। हमने वह आंकड़े इकट्ठा किए और उनका आईसीआईसीआई के दावों के साथ सत्यापन किया था। लेकिन स्कायमेट तो केवल वर्तमान आंकड़े ही दिखाएगी और जानकारियां बचा कर नहीं रखेगी। अतएव हमारे पास सत्यापन के लिए मौसमी आंकड़े नहीं होंगे।''

पटरी से उतरी बीमा प्रणाली : केन्द्र सरकार का राष्ट्रीय फसल बीमा कार्यक्रम (रा. फ.बी.का.) के अंतर्गत मौसम आधारित फसल बीमा योजना (मो.आ.फ.बी.यो.) विपरीत मौसमी परिस्थितियों की वजह से हुए फसल नुकसान हेतु किसानों को बीमा कवर एवं वित्तीय सहायता प्रदान करता है। इन परस्थितियों में कम, गैर-मौसमी या अतिवृष्टि, गर्मी, पाला गिरना, ओले गिरना और बादल फटना शामिल है। मौसम, हवा और अन्य मापदंडों से संबंधित आंकड़ों के लिए रा. फ. बी. का. ने निजी बीमा कंपनियों को मौसम संबंधी मापदंड रिकार्ड करने हेतु ए. डब्ल्यू. एस. स्थापित करने के लिए सूचीबद्ध किया है। इन्हीं सूचीबद्ध कंपनियों में से ही राज्य या जिला स्तरीय अधिकारी तृतीय पक्ष के रूप में फसल बीमा हेतु मौसम आंकड़े संग्रहित करने हेतु अपने मौसम केन्द्र स्थापित करने वाली कंपनियों का चयन करते हैं। वैसे उपलब्ध आंकड़ों को सत्यापित करने की कोई प्रणाली मौजूद नहीं है। हालांकि रा.फ.बी. का. दावा करता है कि ए. डब्ल्यू. एस. की नियमित निगरानी सरकारी अधिकारियों द्वारा की जाती है। राजस्थान के सरकारी अधिकारियों का कहना है कि वह इस बात की नियमित जांच करते हैं कि स्वचलित मौसम केन्द्र ठीक से कार्य कर रहे हैं या नहीं। राजस्थान सरकार के फसल बीमा के सहसचिव बी. एस. चतुर्वेदी का कहना है, ''यदि कोई एक मौसम केन्द्र काम नहीं कर रहा होता है तो हम उस क्षेत्र से संबंधी मापदंडों को सुनिश्चित करने हेतु पास के किसी केन्द्र से आंकड़े इकट्ठा कर लेते हैं।''

किसान निजी कंपनियों के बजाय सरकारी भविष्यवाणियों को प्राथमिकता देते हैं। अखिल भारतीय किसान सभा, राजस्थान के संजय का कहना है, ''भारतीय मौसम विभाग द्वारा उपलब्ध आंकड़ों में गलती हो सकती है, लेकिन उनके फसल बीमा कंपनियों से गठजोड़ की उम्मीद कम है। इसके अलावा यदि मौसम विभाग के आंकड़े गलत होंगे तो किसान कृषि विभाग से सवाल-जवाब कर सकते हैं, परंतु निजी कंपनियों तक किसान की पहुंच बहुत कठिन है।'' राजस्थान कृषि विभाग के कुलदीप रांका का कहना है कि रा.फ.बी.का. के अंतर्गत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जिसके तहत भारतीय मौसम विभाग आंकड़े उपलब्ध करा सके। वहीं केन्द्रीय पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के पूर्व सचिव शैलेन्द्र नायक का कहना है, ''मांगे जाने पर भारतीय मौसम विभाग विशिष्ट श्रेणी के आंकड़े भी उपलब्ध करा सकता है। हम मौसम संबंधित तमाम आंकड़े पहले ही कृषि विभाग को दे चुके हैं।''

विशेषज्ञों का कहना है कि गैर-सरकारी इकाइयों की भूमिका में स्पष्टता के अभाव का कारण किसी नियामक प्राधिकारी की अनुपस्थिति है। अमेरिका जैसे देशों में जहां पर निजी मौसम कंपनियों का व्यापार खूब फल-फूल रहा है, वहां की संघीय विमानन एजेंसी (फेडरल एविएशन एजेंसी) उनका नियामन करती है और परिचालन हेतु शर्तों एवं नियमों का निर्धारण भी करती है।

दोस्तो!

आप वेस्टर्न कल्चर अपना रहे हैं तो कोई दिक्कत नहीं लेकिन यह जरूर याद रखें – सूरज जब भी वेस्ट (पश्चिम) में गया है, तब हमेशा डूबा ही है।

अमेरिका में सन् 1995 से 2007 के मध्य मौसम कंपनियों की संख्या दुगनी हो गयी है। फसल बीमा और विद्युत के अलावा अब भवन निर्माण कार्य जैसे अनेक क्षेत्रों में मौसमी आंकड़ों की आवश्यकता पड़ने लगी है। एक राष्ट्रीय एजेंसी ऐसी विशिष्ट सेवाएं उपलब्ध नहीं करवाती, अतएव निजी कंपनियां इस उभरते बाजार पर कब्जा तो करेंगी ही।

इस बीच भारत में भी निजी मौसम कंपनियों का बाजार लगातार बढ़ रहा है। स्कायमेट भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय निजी मौसम कंपनी है। सन् 2003 में प्रारंभ हुई इस कंपनी ने पूरे भारत में 2700 मौसम केन्द्र स्थापित किये हैं, जो कि निजी कंपनियों में सर्वाधिक हैं। महाराष्ट्र और राजस्थान इसके दो सबसे बड़े बाजार हैं। चुरु में स्थापित 50 स्वचलित मौसम केन्द्रों में 30 इसी कंपनी के हैं। कंपनी के उपनिदेशक ए. एम. शर्मा का कहना है, ''हम फसल बीमा कंपनियों को पहले से ही बता देते हैं कि विशिष्ट फसल के मौसम के दौरान भौगोलिक तौर पर कौन-सा क्षेत्र जोखिम भरा रह सकता है।'' मौसम के उतार-चढ़ाव के चलते निजी भविष्यवाणी कंपनियों का बाजार बढ़ेगा और इसी के साथ नियामक प्राधिकारी की आवश्यकता भी बढ़ती जाएगी। ❑

KHANNA SPORTS INDUSTRIES PVT. LTD.

Sports Good Manufacturers & Exporters

A-7, Sports Complex, Delhi Road, Meerut - 250 002 (U.P.) India
IInd Unit - F-4 to F-7, Udyog Puram, Partapur, Delhi Road, Meerut - 250 103 (U.P.)

Tele-Sales: 0121-2532112, Telephone: 0121-2515497/3775, Tele Addeess: Khanna Sports, Meerut.
E-mail: sales@khannasports.com, web: www.khannasports.com

खन्ना प्रोडक्टस (इण्डिया) प्रा० लि०

41, महाराणा प्रताप स्पोर्टस पुरम, मेरठ

Khanna Products (India) Pvt. Ltd.

41, Maharana Pratap Sports Puram, Meerut - 250 001 (India)
Telephone: 0121-2763037, E-mail: khannaproduct@yahoo.com

आचार-व्यवहार

ज्ञान का सार आचार है

❑ शुभू पटवा

दर्शन से यहां तात्पर्य जीवन-व्यवहार से ही है। यदि हम ठीक तरह से देख पाएं तो इस नतीजे पर आसानी से पहुंच सकेंगे कि जीवन-व्यवहार के घालमेल ने ही अनेक तरह की जटिलताएं और विसंगतियां पैदा की हैं।

आचार ही ज्ञान की सार है—यह निर्विवाद है। यदि हमारे आचार-व्यवहार में उसकी झलक नजर न आए तो कहा जाना चाहिए कि वह ज्ञान का एक प्रकार से बोझ है। हम जिन हालातों में जी रहे हैं—क्या आज यही नहीं लग रहा? हम जो-कुछ जानते हैं, हमारा आचरण उसके अनुरूप नहीं है। इसीलिए हमारा पर्यावरण और परिवेशिकी अथवा पारिस्थितिकी दूषित हो रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ भौतिक विकास की ऊंची मीनारें तो अवश्य खड़ी हुई हैं, लेकिन हमें यह मानना होगा कि प्राणी-जगत पर इस विकास की जटिलताओं ने प्रतिकूल असर छोड़ा है। आम-जीवन से लेकर सामुदायिक जीवन-चक्र पीड़ित और प्रताड़ित है, तो दूसरी ओर समूचा जैव-मंडल भी इसकी चपेट में है। शास्त्र की यह बात—'नाणस्स सारमायारो'—वर्तमान में तो शास्त्र में ही प्रकट होती नजर आ रही है, हमारे जीवन-व्यवहार में नहीं। ज्ञान का सार आचार है, पर हमारे आचार में वह प्रतिबिम्बित नहीं हो रहा।

ऐसा क्यों है? अब यह स्पष्ट है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ दर्शन की समन्विति का आग्रह इसीलिए है। इनकी समन्विति के बिना कोई ज्ञान आचार में प्रतिबिम्बित हो नहीं सकता। इनकी समन्विति की आवश्यकता को स्वीकारते हुए प्रमुख विद्वान डॉ. गोविन्दचंद्र पांडे कहते हैं कि विज्ञान के द्वारा मनुष्य नाना प्रकार के भौतिक साधन प्राप्त कर सुखों की प्राप्ति में तो समर्थ हो जाता है, लेकिन वह अंतर्दृष्टि नहीं पा सकता, जिससे मन को मुक्ति मिले। मन की मुक्ति से यहां उनका आशय उन जटिलताओं से मुक्ति ही है, जिनकी जकड़ में रहते हुए इस समय उसे विषमताभरा जीवन जीना पड़ रहा है। इसीलिए डॉ. पांडे स्पष्ट करते हैं—'विशुद्ध वैज्ञानिक अपने परम सिद्धांतों को दर्शन की सहायता के बिना व्यवस्थित और संगत रूप नहीं दे सकते और न विज्ञान की सहायता के बिना विशुद्ध दार्शनिकीकरण से विश्व का स्वरूप-निर्धारण हो सकता है। अतः दर्शन और विज्ञान की एक नई उच्च स्तरीय समन्विति आज के चिन्तन की परम आवश्यकता है।'

दर्शन से यहां तात्पर्य जीवन-व्यवहार से ही है। यदि हम ठीक तरह से देख पाएं तो इस नतीजे पर आसानी से पहुंच सकेंगे कि जीवन-व्यवहार के घालमेल ने ही अनेक तरह की जटिलताएं और विसंगतियां पैदा की हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कारण हुए द्रुत विकास से यदि हमारा जीवन-व्यवहार प्रभावित न हुआ होता तो इन जटिलताओं से मुक्त रहा जा सकता था। जीवन-व्यवहार के सूत्र कोई अनजाने नहीं हैं। आज भी यदि इस दृष्टि से विचार किया जाए तो हम गाड़ी को पटरी पर ला सकते हैं। अपने परिवेश व पर्यावरण को बचा सकते हैं और उसकी बिगड़ी सूरत में सुधार की सम्भावना तलाशी जा सकती है।

समन्विति के अभाव और इकतरफा झुकाव ने जो असंतुलन पैदा किया है, उसे मिटाने के लिए शासन की दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रबल प्रतिबद्धता सबसे पहले जरूरी है। हम देखते हैं कि समूचे विश्व के शासकों ने इस सचाई को तो स्वीकार किया है कि पर्यावरण और परिवेशिकी में गंभीर असंतुलन पैदा हो गया है, इसे रोकना आवश्यक है और यदि न रोका गया तो विनाश अवश्यम्भावी है। पर, इस स्वीकार के बावजूद यदि किसी प्रकार का निर्णायक कदम न उठ सका तो उसका एकमात्र कारण यही माना जा रहा है कि 'बाजार की शक्तियां' शासकों पर हावी हैं। अपने हित-साधन के सिवा चूंकि 'बाजार' का कोई अन्य उद्देश्य कभी रहा ही नहीं है, अतः प्रथमतः यह जरूरी है कि 'बाजार की शक्तियों' पर अंकुश लगाया जाए, उसकी निरंकुशता को नियंत्रित किया जाए।

इसके लिए दो उपाय सोचे जा सकते हैं। पहला उपाय तो शासन के ही हाथ में है कि वह उस 'बाजार' को ध्वस्त करे जो विलासिता को बढ़ाने, आदमी की श्रमशीलता को कुंठित करने में अग्रणी है। इस बाजार से गैर-बराबरी, हिंसा और विषमता पैदा होती है तथा परस्परता, प्रेम और सहभागिता-सहजीविता नष्ट होती है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी से आम आदमी की बेहतरी कैसे हो सकती है—उस दिशा में उसे अग्रसर किया जाए। दूसरा उपाय वैयक्तिक भी है और सामुदायिक भी, जिसमें शासन का नैतिक व सांसाधनिक संबल होना जरूरी है। विज्ञान और दर्शन की समन्विति का निहितार्थ भी यही है। यह उपाय है—वह जीवन-व्यवहार, जो अध्यात्म की वेदी पर अवलंबित हो। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास और विस्तार के लिए जितने संसाधन शासन की ओर से जुटाए जाते रहे हैं, इसी अनुपात में दर्शन और अध्यात्म के लिए भी आवश्यकतानुसार संसाधन उपलब्ध कराने की वचनबद्धता होनी चाहिए। हमारे जीवन-व्यवहार में वे सभी बातें समाहित हो सकती हैं, जो हमारे पर्यावरण को पुष्ट बनाती हैं। इसके लिए लोक-शिक्षण भी एक जरूरी पक्ष है। यह भी आवश्यक है कि उन सभी कार्यकलापों को, जो पर्यावरण के प्रतिगामी हो सकते हैं, को आम-जीवन से अलग-थलग करने के कठोर उपाय व कदम शासन की ओर से उठें। ये उपाय यदि पूरी प्रतिबद्धता से किए जाएं, तो जिस विषमता और असंतुलन का जीवन हम देख रहे हैं, उससे मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

विश्व पर्यावरण दिवस जैसे अवसरों पर उपरोक्त मतानुसार विचार किया जाना चाहिए।

हमें भूलना नहीं चाहिए कि भारतीय मूलतः परस्परता और सौहार्द में विश्वास रखता है। अहिंसा, प्रेम और सहिष्णुता अभी भी भारतीय मन की अकाट्य पहचान हैं। भौतिकता के दुर्द्धर्ष दबाव के उपरांत भी शांतिपूर्ण जीवन के लिए, मन की शांति के लिए—संयम, श्रद्धा और सत्यनिष्ठा के प्रति लोगों की आस्था घटी नहीं है। अध्यात्म भी तो यही है और जिन अर्थों में अब अध्यात्म को परिभाषित किया जाने लगा है, आम जीवन में उसका समावेश भी अब सहज-सरल हो सकता है। यह होने से ही समस्याओं से मुक्ति और जीवन की सहजता हासिल हो सकती है। अध्यात्म का तात्पर्य अब उन बातों को प्रायोगिक रूप देने में है जो क्रियाकांडों से मनुष्य को बचाते हुए कथनी और करनी के भेद को समाप्त करता है। इसीलिए आध्यात्मिकता और वैज्ञानिकता को निकट लाकर देखने की अवधारणा ने जमीन बनानी शुरू की है।

इसी के साथ अपनी पारम्परिक जीवन-शैली को भी हमें फिर से देखना चाहिए। हम उस जीवनचर्या, खान-पान और रहन-सहन की ओर गौर करें। हम पाएंगे कि यदि पूरी तरह उसे ही अंगीकार कर लिया जाए तो हमारा अपना 'पर्यावरण' परिपुष्ट हो जाएगा। हमारी उस जीवनचर्या में आहार-शुद्धि और व्यसन-मुक्ति प्रमुखतः रहे हैं। ये केवल शारीरिक विकारों से ही मुक्त नहीं रखते, हमारे मानसिक-स्नायविक तंत्र को भी सकारात्मक क्षमता प्रदान करते हैं। जो जीवनचर्या इसके विपरीत है, वह सर्वथा अप्राकृतिक है। हम जानते हैं कि प्रकृति के विरुद्ध जाने का अर्थ है—उसका कोप-भाजन बनना। प्रकृति का अपना दंड-विधान है, वह किसी को माफ नहीं करती, पर दंड-स्वरूप कब कहर बरपा दे, पता भी नहीं चलता।

यदि हम ऐसा मानते हों, तो हमें अपना जीवन-व्यवहार प्रकृति-सम कर लेना चाहिए। ज्ञान का सार हमारे ऐसे ही आचार में निहित है। हमारा पर्यावरण भी इसी में सुरक्षित है। ❑

कविता

मनुष्यों का सनातन धर्म

❑ ऋषिवंश

सभी अपने धर्म का निर्वाह करते
वही अंधा और बहरा धर्म
धर्म के उल्लू पढ़ाते जो, बताते जो
नचाते जब जिस तरह
नाचते हम और तुम भी
धर्म के उल्लू सभी को नचाते,
सब नाचते

कभी मैं ब्राह्मण और तुम मुल्ला
तुम कभी ब्राह्मण, मैं कभी मुल्ला
मैं कभी सरदार जटा वाला सिख
कभी तुम क्रिश्चियन-हरिजन
कभी कुछ तुम, मैं कभी कुछ
धर्म अपना
सब निभाते काठ के उल्लू

क्यों नहीं हम याद रख पाते
हम महज मनुष्य हैं
क्यों नहीं है याद हमको और तुमको
हमारे वे गीत गौरव के
हमारी सद्भावना के और सुख के
क्यों नहीं हम तुम जगाते फिर रहे
सौ रही सब शक्तियों को
जो हमारे अधिकारों के
जागने से सौ रही है
रौ रही है जो हमारी मूर्खता पर
हमारी लोभी नजर पर

जगाना होगा हमें इनको
अब हमें इनकी जरूरत है
युद्ध से हम थक चुके हैं
अहं से हम थक चुके हैं
धर्म से हम थक चुके हैं
मारना है नष्ट करना है हमें अब
सभी पंथों के गलत मत को
सभी पंथों के सही मत को मिलाकर
बनाना है एक मानवपंथ अपना
बस नहीं अब युद्ध करना है हमें
एक मानवपंथ रचना है हमें मिलकर
सभी धर्मों के, सभी पंथों के
सींचना है हमें अपने रक्त से भी
धरा पर फिर शांति लाने के लिए
आह! अपना दिव्य मानवपंथ
धन्य अपना यह सनातन पंथ
हमारा अपना,
मनुष्यों का सनातन पंथ

काश पहले ही कहीं पर बैठकर
छोड़कर अभियान सारे
प्रेमभय वातावरण में बात करते कभी
हम-तुम
तो नहीं ये जहर के बादल बरसते
हमारी प्यारी धरा पर
नहीं बहनें और
माताएं हमारी रुदन करतीं
जो बनी हैं आज विधवाएं निराश्रित
भाइयों में नहीं यह अलगाव होता
काश, थोड़ा सा—तनिक भी
अगर वह सोचते
सोचते फिर बोलते हम तुम परस्पर
कौन छोटा बड़ा कौन
सभी तो उस एक मालिक के बनाये
एक धरती के सभी बच्चे
जभी चेते तभी से प्रारम्भ है
यही अन्तिम हुआ निर्णय। ❑

सर्व सेवा संघ-अध्यक्ष के नाम पत्र

प्रिय विद्रोही जी,

आपका स्नेह पत्र मिला। धन्यवाद।

मैंने आने का मन बना लिया था। रिजर्वेशन के लिए भी कह दिया था। लेकिन नई दिल्ली स्टेशन की सीढ़ियां इतनी ऊंची-ऊंची हैं कि इस आयु में उन पर चढ़ना हिमालय की यात्रा लगती है। जाड़ा आरम्भ होने के कारण और भी ज्यादा।

सर्व सेवा संघ के तत्त्वावधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर जो आप आयोजन कर रहे हैं, यह विषय मेरे हृदय के निकट है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मानक भी अब अलग हो गए हैं। कल मैंने प्रधानमंत्री जी का संसद में, दो दिन की संविधान-चर्चा के समापन पर दिया गया भाषण सुना था। पूर्व नियोजित और इकतरफा। मुझे आश्चर्य होता है कि उन्होंने डॉ. अम्बेडकर का संविधान के निर्माता के रूप में बार-बार उल्लेख किया, और किया भी जाना चाहिए था। लेकिन उनकी इस प्रतिभा को पहचानने वाले व्यक्ति यानी गांधीजी का, इस संदर्भ में नाम लेने की एक बार भी जहमत नहीं उठायी। गांधीजी ने ही पटेल जी से कहा था, यदि समुचित संविधान बनाना है तो डॉ. अम्बेडकर को मंत्री बनाओ। लेकिन प्रधानमंत्री जी को, इस संविधान के इस वास्तुकार को पहचानने वाले और मंत्री बनवाने वाले, दूर-दृष्टि सम्पन्न व्यक्ति का नाम लेने में संकोच होने से, लगता है कि गांधीजी का नाम भारत में लेना उन्हें ठीक नहीं लगता। जबकि विदेशों में, अमेरिका हो या लंदन, जाकर वे गांधीजी का बार-बार उल्लेख करते हैं। भारत में जिसे व्यक्ति के नाम के प्रति असहिष्णुता है, उस नाम के प्रति वहां सहिष्णुता कैसे हो जाती है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मानदंड पी.एम. के लिए अलग है और सामान्य आदमी के लिए अलग। देश के लेखकों, कलाकारों आदि पर उनके मंत्री आरोप लगाते हैं, उनका सम्मान वापिस करने का यह आंदोलन राजनीति प्रेरित है, पूर्व नियोजित है, या इसके पीछे पैसा है आदि। ये सब आरोप क्या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान बढ़ाने वाले हैं? संविधान में यह प्रावधान नहीं है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत मंत्री अपनी सीमा का उल्लंघन कर सकते हैं और प्रधानमंत्री अपनी पसंद के अनुसार तथ्यों को सुविधानुसार चुन और छोड़ सकते हैं। हमारे लेखकों, कलाकारों, वैज्ञानिकों और फिल्मकारों के सम्मान वापिस करने की प्रक्रिया अहिंसक विरोध है। जबकि उसके विरुद्ध शाब्दिक हिंसा का वातावरण बना हुआ है। क्या यह राजनीतिक नहीं है?

यह सवाल कि इन लेखकों द्वारा सम्मान वापिस पहले क्यों नहीं किए गए, जब अमुक-अमुक घटनाएं हुईं, बेमानी है। वे सब घटनाएं तो देश के सभी वर्गों के सामने घटी थीं। राजनीतिक पार्टियों ने क्या किया? सिर्फ जबानी जमा खर्च। जिन बुद्धिजीवियों की हत्याएं एक के बाद एक हुईं, वे सब उनके अपने वर्ग के थे। उनके पास अपना प्रतिरोध प्रकट करने का यही एक अहिंसक रास्ता था। अगर कलबर्गी की कट्टरवादियों द्वारा की गयी हत्या के बारे में सरकार का वक्तव्य आ गया होता तो इसकी जरूरत न होती। सबसे अधिक आश्चर्य की बात थी, साहित्य अकादमी ने उनकी हत्या पर केन्द्रिय ऑफिस को अनर्गल वक्तव्यों से नकार कर क्या प्रमाणित करना चाहती है? बेहतर होता कि प्रधानमंत्री बुलाकर बात करते। वे देश की शीर्षस्थ बौद्धिक व सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिनिधि हैं। उनका तिरस्कार इसलिए नहीं किया जा सकता कि सरकार को उनका प्रतिरोध अपने हित के विरुद्ध लगा। प्रधानमंत्री बात नहीं करना चाहते थे, तो सम्मानजनक जांच करके वास्तविकता का पता लगाते। यह ठीक है सम्मान देश देता है। पर देश यह नहीं कहता कि यदि लेखकों की हत्याएं हों तो सम्मान को सीने से लगाए बैठे रहो। मैं सरकार के इस सोच से असहमत हूं, विरोध भी सरकार की सुविधा के अनुसार किया जाना चाहिए। यह कहना गलत है कि उनका विरोध बिहार के चुनाव के कारण किया गया है। अगर लेखक अपने विरोध से सरकारों को हरवा सकता है तो यह भ्रम नहीं तो क्या है।

अंत में एक बात कहकर यह पत्र समाप्त करता हूं कि मैं नेहरूजी की बहुत-सी बातों से असहमत रहा हूं, जैसे 1945 में गांधीजी के गांवों के सशक्तीकरण के प्रस्ताव को उनके द्वारा ठुकराया जाना। लेकिन यह भी मानता हूं कि अगर नेहरू 17 साल प्रधानमंत्री न रहे होते तो देश में उसी प्रकार जनतंत्र न रह पाता, जैसे हमारे प्रधानमंत्री मानते हैं कि अगर बाबा साहब न हुए होते तो वे प्रधानमंत्री न हुए होते। उन्हें इसी प्रकार खुले मन से इस बात को भी स्वीकार करना चाहिए था। नेहरू का नाम भी शायद उनके गले में अटक जाता है। फिर भी मैं प्रधानमंत्री के लिए प्रार्थना करता हूं, संकीर्णता और असहिष्णुता के दौर में, इन सबसे ऊपर उठकर देश के भविष्य को सँवारे।

–गिरिराज किशोर

11/210, सूटरगंज, कानपुर-208011

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1500